RNI No.: MPBIL/2001/5256
DAVP Code : 128101
Postal Registration No. : भोपाल/म.प्र./581/2021-2023
Publish Date : Every Month Dt. 05
Posting Date : Every Month Dt. 15
Rs. 10/-

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

वर्ष 24 अंक 08 05 अप्रैल 2024

जगत विज़न

लोकसभा चुनाव 2024

मोदी बनाम विपक्ष का घमासान

अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही कई पार्टियां

प्रेरणा स्त्रोत : स्व. श्री जगत पाठक

निर्भीक पत्रकारिता

संपादक विजया पाठक
कार्यकारी संपादक समता पाठक
दिल्ली संवाददाता नीरज दिवाकर
पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ अमित राय
विशेष संवाददाता अर्चना शर्मा

सम्पादकीय एवं विज्ञापन कार्यालय
भोपाल
एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल
मो. 98260-64596, मो. 9893014600
फोन : 0755-4299165 म.प्र. स्वत्वाधिकारी,

छत्तीसगढ़
4-विनायका विहार, रिंग रोड, रायपुर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक,
विजया पाठक द्वारा समता ग्राफिक्स
एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. द्वारा कम्पोज एवं जगत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्लाट नं. 28 सुरभि विहार बीडीए रोड भेल भोपाल से मुद्रित एवं एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित संपादक विजया पाठक। समस्त विवादों का कार्यक्षेत्र भोपाल सत्र-न्यायालय रहेगा। पत्रिका में प्रकाशित किये जाने वाले संपूर्ण आलेख एवं सामग्री की जिम्मेदारी लेखक एवं संपादक की होगी।

E-mail : jagat.vision@gmail.com
Website: www.jagatvision.co.in

मासिक द्विभाषी पत्रिका वर्ष 24 अंक 8 05 अप्रैल 2024

(पृष्ठ क्र.-6)

- सड़कों पर अन्नदाता, कठघरे में मोदी सरकार 30
- पॉवरफुल रहा महंत का राजनीतिक जीवन.....44
- क्या दिल्ली में लगेगा राष्ट्रपति शासन?.....46
- भारत में विलय की ओर बढ़ता पाक अधिकृत कश्मीर 48
- चुनाव आयोग की ईमानदारी लोकतंत्र की आत्मा है 52
- सरकार रूपी रोटी को उलटते-पलटते रहें 58
- In Dev Bhumi, enactment of UCC topped off .....62 with Haldwani violence

बैट से बॉल को क्रिकेटर कूटते हैं... मंत्री का बेटा तो इंसानों को कूटेगा!
विजया:)

2024 के आम चुनाव और विपक्षी नेताओं की कड़वाहट

18वें लोकसभा चुनाव की रणभेरी बज चुकी है। सभी चुनावी सर्वेक्षणों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा नीत राजग की तीसरी बार लगातार सरकार बनने की भविष्यवाणी की है। स्वयं प्रधानमंत्री मोदी 400 पार सीटें जीतने का दम भर रहे हैं। परंतु इन दावों के बीच वास्तविक नतीजे क्या होंगे, वह 04 जून को मतगणना के पश्चात पता चलेगा। परंतु एक बात तो तय है कि विरोधी गठबंधन सत्तारूढ़ भाजपा का सशक्तविकल्प बनने में विफल हो रहा है। अधिकांश विपक्षी दलों और भाजपा में मूलभूत अंतर यह है कि भाजपा सकारात्मक मानसिकता के साथ अपनी विचारधारा से प्रेरित होकर जिन मुद्दों और लक्ष्यों को सामने रखकर चुनाव लड़ती है, वह उसे जनसमर्थन मिलने पर पूरा करने हेतु जी-जान भी लगा देती है। धारा 370-35ए के मामले में क्या हुआ? भारतीय जनसंघ (वर्तमान भाजपा) के संस्थापक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने धारा 370 को भारत के साथ कश्मीर के एकीकरण में सबसे बड़ा बाधक बताते हुए नहीं चलेगा एक देश में दो विधान, दो प्रधान और दो निशान नारा दिया था। वर्ष 1953 में इसी मुद्दे पर संघर्ष करते हुए कश्मीर की जेल में उनकी संदेहास्पद मृत्यु हो गई। इसी बलिदान से प्रेरित होकर जनसंघ/भाजपा ने अपने प्रत्येक चुनावी घोषणापत्र में इस विभाजनकारी धारा के परिमार्जन परबल दिया। 70 वर्ष पश्चात जब वर्ष 2019 में प्रधानमंत्री मोदी के करिश्माई नेतृत्व में भाजपा पहले से अधिक प्रचंड बहुमत के साथ सत्ता में लौटी, तब उसने इसका संवैधानिक क्षरण कर दिया। परिणाम सबके सामने है। कश्मीर पहले से कहीं अधिक शांत, समरस और समृद्ध दिख रहा है।

इस प्रकार प्रतिबद्धता केवल धारा 370 तक सीमित नहीं। भले ही अधिकांश विरोधी वर्षों से राम मंदिर को केवल राजनीतिक चश्मे से देख रहे हैं, परंतु भाजपा के लिए यह सदैव आस्था और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का विषय रहा। 06 दिसंबर 1992 को कारसेवकों द्वारा बाबरी ढांचा ढहाने के बाद कांग्रेस की तत्कालीन केंद्र सरकार ने चार राज्यों हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में भाजपा सरकारों को गिरा दिया था। इसके बाद भी वे रामजन्मभूमि की मुक्तिहेतु कटिबद्ध रहे और जिस प्रकार इस मामले की सुनवाई में 2014 से पहले रोड़े अटकाने के प्रयास किए थे, उसे दूर करने के बाद जब नवंबर 2019 में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रभु रामलला के पक्ष में निर्णायक फैसला दिया, तब मंदिर पुनर्निर्माण हेतु सभी आवश्यक व्यवस्था की गई। परिणामस्वरूप, इसी वर्ष 22 जनवरी को प्रधानमंत्री मोदी ने पुनर्निर्मित राम मंदिर का भव्य उद्घाटन करके वृहद हिंदू समाज की 500 वर्ष पुरानी प्रतीक्षा को समाप्त कर दिया। स प्रकार की कई जनकल्याणकारी योजनाओं, जिसमें प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना भी शामिल है उसका लाभ यह हुआ कि देश की लगभग 25 करोड़ आबादी बहुआयामी गरीबी से बाहर निकल आई। आत्मनिर्भर भारत, मेक इन इंडिया और स्टार्ट-अप इंडिया रूपी योजनाओं और आधारभूत ढांचे के कायाकल्प आदि नीतिगत उपायों से भारत दुनिया की 5वीं बड़ी आर्थिक शक्तिबन गया (2014 में 11वें पायदान पर था) तो वर्ष 2027 तक देश के तीसरी बड़ी आर्थिकी बनने की संभावना है। भारतीय तकनीक-विज्ञान-अनुसंधान कौशल के इतिहास में स्वदेशी कोविड वैक्सीन और चंद्रयान-3 परियोजना में विक्रम लैंडर के सफलतापूर्वक चंद्रमा के दक्षिण ध्रुव पर पहुंचना मील के पत्थरों में से एक है। इस आमूलचूल परिवर्तन को मोदी सरकार के शीर्ष स्तर का भ्रष्टाचार से मुक्त होना और अधिक स्वागतयोग्य बनाता है। अपने विवादित वक्तव्यों के कारण राहुल गांधी सार्वजनिक विमर्श में है। आखिर असली राहुल कौन है? क्या वह, जिसने 2009 में हिंदू संगठनों को घोषित आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा से अधिक खतरनाक बताया था? या वह जिसने 2013 में अपनी ही सरकार द्वारा पारित अध्यादेश को फाड़कर फेंक दिया था? या वह, जिसने 2016 में जेएनयू में भारत-विरोधी नारे लगाने वाले आरोपियों का न केवल समर्थन किया, अपितु कालांतर में उन्हीं आरोपियों में से एक को अपनी पार्टी में शामिल तक कर लिया?

विजया पाठक

लोकसभा चुनाव 2024

मोदी बनाम विपक्ष का घमासान

अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही कई पार्टियां

लोकसभा चुनाव को लेकर सियासी शंखनाद हो चुका है। मोदी बनाम तमाम विपक्ष पर हो रहे इस चुनाव में कई पार्टियों की साख भी दांव पर लगी है। पूरा विपक्ष एक होकर वर्तमान मोदी सरकार को हराना चाहता है। यह भी सच है कि देश के अदर इस समय मोदी लहर चल रही है। माहौल बीजेपी के पक्ष में है। लेकिन यह भी सच है कि जिस तरह से मोदी सरकार ने विपक्ष पर जांच एजेंसियों के माध्यम से हमला बोला है उससे लोगों के अंदर अलग तरह की सोच पनपी है। विपक्ष भी इस बार के चुनाव में इसी बात का जिक्र कर रहा है कि मोदी सरकार तानाशाही रवैया अपनाकर विपक्ष को खत्म करना चाहती है। इसके उलट मोदी सरकार पर विपक्ष की बातों का कोई फर्क ही नहीं पड़ रहा है। इसके अलावा कांग्रेस अन्य दलों के नेताओं का बीजेपी में शामिल होना कहीं न कहीं डर को माहौल पैदा कर रहा है। इस बार एक तरफ बीजेपी खड़ी है तो वहीं दूसरी तरफ इंडिया गठबंधन टक्कर देने का काम कर रहा है। इस बार पीएम मोदी को टक्कर देने के लिए विपक्ष कुनबा ज्यादातर राज्यों में एकजुट हो चुका है। ऐसे में विपक्ष का दावा है कि इस बार वोटों का बिखराव कम रहने वाला है और उसी का सीधा फायदा उसे मिल सकता है। लेकिन गठबंधन और असल में उससे बनने वाले जमीन पर समीकरण कुछ अलग होते हैं। 2019 में बीजेपी के खाते में 303 सीटें और एनडीए को 353 सीटें मिली थीं। इस तरह नरेंद्र मोदी दूसरी बार देश के प्रधानमंत्री बने थे। 2019 के लोकसभा चुनाव में, विपक्ष को कुल 91 सीटें मिली थीं। कांग्रेस के खाते में मात्र 52 सीटें आई थीं। तब मुकाबला एनडीए बनाम यूपीए के बीच हुआ था। इस बार विपक्ष इंडिया नाम से चुनावी मैदान में है। कांग्रेस के लिए सबसे बड़ी चुनौती ऐसे राज्य हैं जहाँ वो सीधे बीजेपी को टक्कर नहीं दे रही यानी तीसरे नंबर या उससे भी नीचे है। अब इस बार के चुनाव में जहां बीजेपी नेतृत्व अगले 20 वर्षो का विजन पेश कर रहा है, वहीं कांग्रेस नेतृत्व इसे लोकतंत्र बचाने का आखिरी मौका करार दे रहा है। यानी इन चुनावों का फलक पांच साल के काम के आधार पर अगले पांच साल के लिए जनादेश के सामान्य ट्रेंड तक सीमित नहीं रहा। दिलचस्प है कि सत्तारूढ़ बीजेपी इन चुनावों में जिन फैसलों पर सबसे ज्यादा जोर दे रही है, वे भले पांच वर्षो के मौजूदा सरकार के कार्यकाल के दौरान लिए गए हों, लेकिन उन मुद्दों से जुड़े हैं जो वर्षो नहीं, दशकों से बीजेपी के मूल मुद्दों के रूप में पहचाने जाते रहे हैं। चाहे राममंदिर, अनुच्छेद 370 और CAA की बात हो या ज्ञानवापी मस्जिद के अंदर पूजा शुरू होने की, ये सारे मुद्दे बीजेपी के इस दावे को मजबूती देते हैं कि वह जो कहती है, करके दिखाती है। विपक्षी दलों ने इन चुनावों में उन लोगों को संबोधित करने और अपनी ओर खींचने की रणनीति बनाई जो बीजेपी के जाने-पहचाने नैरेटिव के प्रभाव से बाहर माने जाते हैं। I.N.D.I.A. बनाकर हर सीट पर साझा प्रत्याशी खड़ा करने की सोच के पीछे यही इरादा था। मगर नीतीश कुमार की NDA में वापसी और ममता बनर्जी का I.N.D.I.A. से बाहर रहने का फैसला इस रणनीति के आजमाए जाने से पहले ही नाकाम होने का संकेत है। बहरहाल, देखना होगा कि आगे विपक्षी दल अपना केस वोटरों के सामने कितने कारगर ढंग से रख पाते हैं। महंगाई, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी जैसे पुराने मुद्दे भी उठाए ही जा रहे हैं, लेकिन वोटर के फैसले में इनकी कितनी भूमिका रहेगी यह अभी स्पष्ट नहीं है। कांग्रेस नेता राहुल गांधी की दो-दो यात्राओं से उपजे प्रभाव की परीक्षा भी इन्हीं चुनावों में होनी है। कुल मिलाकर, विपक्ष और सत्ता पक्ष कुछ भी कहे देशवासियों की जागरूक चेतना को देखते हुए यह तय माना जा सकता है कि आम चुनाव का यह लोकतांत्रिक पर्व एक बार फिर देश में लोकतंत्र की जड़ों को गहरा ही करेगा।

विजया पाठक

भाजपा का चुनावी अभियान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा है और इस बार भी बीजेपी मोदी के चेहरे पर चुनाव मैदान में उतरी है। जिसके ही परिणाम हैं कि प्रत्येक दिन मोदी की रैलियां विभिन्न राज्यों में हो रही हैं। बीजेपी के बाकी नेता तो अपने क्षेत्रों तक सीमित हैं। कहा जा सकता है कि पूरा चुनाव मोदी के इर्दगिर्द घूम रहा है। बीजेपी मोदी को लेकर ऐसा माहौल बना रही है कि विपक्ष देश के अंदर को तमाम मामलों को भूलकर मोदी को ही घेरने में लगे हैं। यह बीजेपी की प्लानिंग भी है। लोकसभा चुनाव के महासमर में उतरने से पहले विपक्षी दल भाजपा को तीसरी बार सत्ता में आने से रोकने की रणनीति पर काम कर रहे हैं, वहीं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भाजपा को 370 और एनडीए को 400 सीटों के पार पहुंचाने का लक्ष्य भी तय कर लिया है। ऐसे में राजनीतिक विश्लेषक के मन में भी यह सवाल जरूर उठ रहा है कि 10 वर्ष तक सत्ता में रहने के बाद जहां आमतौर पर सत्तारूढ़ दल के लिए मुसीबत बढ़ जाती है, तो ऐसे में भाजपा किस आधार पर बड़ी जीत का दावा कर रही है। अपनी तीसरी जीत के लिए मोदी के नेतृत्व में भाजपा वो सारे राजनीतिक प्रयास कर रही है जो चुनाव जीतने और सरकार बनाने के लिए करना जरूरी होगा। अब मोदी को हटाने के लिए एक साथ आए इंडिया गठबंधन के कांग्रेस समेत 26 दल और उनके नेता मोदी के इस अति विश्वास का मुकाबला क्या लोकसभा चुनावों में भी अपने उसी हौसले से करेंगे जैसे ये दल अपने अपने राज्यों के विधानसभा चुनावों में करते आए हैं। क्योंकि यह कहा जाता है कि नरेंद्र मोदी का जादू कई बार राज्यों की विधानसभा चुनावों में भले ही उतना नहीं चल पाया जितना लोकसभा चुनावों में अब तक चला है। 2024 के लोकसभा चुनावों में मुकाबला सत्ताधारी एनडीए के आत्मविश्वास और विपक्षी इंडिया गठबंधन के हौसले के बीच हो रहा है। सदन में बहस के दौरान विपक्ष द्वारा उठाए गए मुद्दों और सवालों का जवाब देते समय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जब अपने संबोधन में कहा था कि 2024 में वह तीसरी

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भाजपा को 370 और एनडीए को 400 सीटों के पार पहुंचाने का लक्ष्य भी तय कर लिया है। ऐसे में राजनीतिक विश्लेषक के मन में भी यह सवाल जरूर उठ रहा है कि 10 वर्ष तक सत्ता में रहने के बाद जहां आमतौर पर सत्तारूढ़ दल के लिए मुसीबत बढ़ जाती है, तो ऐसे में भाजपा किस आधार पर बड़ी जीत का दावा कर रही है।

बार लगातार अपनी सरकार बनाएंगे और विपक्ष अगली बार 2028 में जब अविश्वास प्रस्ताव लाए तो पूरी तैयारी से लाए। यह उनका आत्मविश्वास ही है जो न सिर्फ भाजपा बल्कि पूरे एनडीए को ताकत देता है। वहीं अपनी सदस्यता बहाल होने के बाद अविश्वास प्रस्ताव पर बहस के दौरान राहुल गांधी मणिपुर की हिंसा को भारत माता पर हमला बताते हैं तो यह उनका हौसला ही है कि वह राष्ट्रवाद की उस पिच पर बैटिंग करने जा रहे हैं जिस पर भाजपा और पूरा संघ परिवार अपना एकाधिकार समझता है। राहुल गांधी का यह हौसला अकेले सिर्फ उनका ही नहीं, बल्कि इंडिया गठबंधन के कांग्रेस समेत उन सभी 26 दलों और उनके नेताओं का है जिनमें एक भी पूरे देश में अकेले भाजपा से टक्कर लेने की स्थिति में नहीं है। यहां तक कि 55 सालों तक देश पर राज कर चुकी कांग्रेस भले ही अखिल भारतीय दल हो लेकिन अकेले वह भी भाजपा से नहीं भिड़ सकती है। इसलिए एक तरफ सत्ताधारी भाजपा नेतृत्व वाला एनडीए गठबंधन है जिसके पास नरेंद्र मोदी जैसा - लोकप्रिय नेता, अमित शाह जैसा रणनीतिकार, भारतीय जनता पार्टी जैसा संगठन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके अनुषांगिक संगठनों का पूरा तंत्र, समर्पित कार्यकर्ताओं की फौज, नौ साल से भी ज्यादा केंद्रीय सत्ता का बल, संसाधन और सरकार की उपलब्धियां हैं। इससे भाजपा और एनडीए को वह आत्मविश्वास मिलता है जिससे वह तीसरी बार लगातार केंद्र में अपनी सरकार बनने का दावा कर सकते हैं। दूसरी तरफ कांग्रेस के साथ आ जुटे 26 क्षेत्रीय दलों का नवोदित गठबंधन है जिसे इंडिया नाम देकर इस गठबंधन ने भाजपा के राष्ट्रवाद के मुकाबले अपनी देशभक्ति को खड़ा करने का हौसला दिखाया है। इस गठबंधन में ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस है जिसने लगातार तीसरी बार पश्चिम बंगाल में जबर्दस्त चुनावी जीत दर्ज करके अपनी ताकत साबित की है। अरविंद केजरीवाल की आम आदमी पार्टी है जिसने दिल्ली में तीन बार अपनी फतह का झंडा लहराया और अब पंजाब में तूफानी जीत दर्ज करके सरकार पर काबिज है। धुर दक्षिण

कांग्रेस के साथ आ जुटे 26 क्षेत्रीय दलों का नवोदित गठबंधन है जिसे इंडिया नाम देकर इस गठबंधन ने भाजपा के राष्ट्रवाद के मुकाबले अपनी देशभक्ति को खड़ा करने का हौसला दिखाया है।

लोकतंत्र की रक्षा के लिए मज़बूत विपक्ष क्यों आवश्यक है?

एक स्वस्थ्य लोकतंत्र के लिए एक मज़बूत सरकार के सामने एक मजबूत विपक्ष का होना ज़रूरी समझा जाता है। विपक्ष सरकार के कार्यों और नीतियों पर सवाल उठाता है और उसे निरंकुश होने से रोकता है। संसद में अगर विपक्ष कमज़ोर होता है तो मनमाने तरीके से सत्ता पक्ष कानून बना सकता है और सदन में किसी मुद्दे पर अच्छी बहस मज़बूत विपक्ष के बिना संभव नहीं है। भारतीय लोकतंत्र इस बात का गवाह रहा है कि जब भी अटल बिहारी वाजपेयी, भैरो सिंह शेखावत, लालकृष्ण आडवाणी जैसे नेता संसद में बोलते थे, सत्ता पक्ष उनकी बातों को संजीदगी से सुनता था। न सिर्फ सुनना, नीतियों और योजनाओं पर विपक्ष की बहस से धार दी जाती थी। एनडीए विपक्ष धारदार, असरदार और ईमानदार हो तो सरकार उसके डर से कांपती है, देश का भला होता है, सरकारी नेताओं का अंहकार, उनकी निरंकुश और मनमानी नियंत्रित रहती है।

में एमके स्टालिन की द्रमुक है जिसने न सिर्फ विधानसभा चुनावों में भाजपा की सहयोगी अन्ना द्रमुक को शिकस्त दी बल्कि उसके पहले 2019 के लोकसभा चुनावों में भी तमिलनाडु में एनडीए के विजय रथ को रोका था। बिहार में मंडल राजनीति के गर्भ

कम्युनिष्ठ विचारधारा से घिर चुकी है कांग्रेस

कभी देश की सबसे मजबूत प्रत्याशियों से भरपूर कांग्रेस पार्टी आज चंद चाटूकारों के दिमाग से संचालित हो रही है। अगर ऐसा ही रहा तो निश्चित ही वह दिन दूर नहीं जब इस पार्टी को लोगों के जहन से निकलने में समय नहीं लगेगा और यह दल पूरी तरह से जमीदोज हो जाएगा। समय बीतते-बीतते गांधी परिवार के आसपास एक कोटरी बन गई है जिनकी संख्या अधिक हो गई और यही कारण है कि आज पार्टी का अस्तित्व संकट में है। कभी देश के सबसे अधिक पढ़े लिखे व्यक्तियों और ज्ञानी व्यक्तियों के समूह इस पार्टी में काम किया करते थे। लेकिन आज कांग्रेसी विचारधारा से अलग लोग इस पार्टी में आने और पार्टी आलाकमान के सलाहकार मंडल में आते ही उन्होंने पार्टी को समाप्त करने का पूरा प्लान बना लिया है। मानों इन लोगों की चाल ढाल देखकर ऐसा लग रहा है जैसे भारतीय जनता पार्टी ने इन्हें कांग्रेस को समाप्त करने का ठेका दे दिया हो। इस समय जयराम रमेश ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो राहुल गांधी के सबसे करीबियों में गिने जाते हैं। बताया जाता है कि जयराम रमेश, केसी वेणुगोपाल और रणदीप सुरजेवाला ने ही वामपंथी विचारधारा वालों को पार्टी में आगे बढ़ाने का फैसला किया है और राहुल गांधी भी काफी हद तक उनकी बातों से सहमत होकर फैसला कर रहे हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि राहुल गांधी की आंखों में एक ऐसे व्यक्ति ने पट्टी बांध रखी है जो खुद तो कभी कोई चुनाव जीत नहीं सका और दूसरे नेताओं को राजनैतिक की एबीसीडी पढ़ाने का काम कर रहा है। यही नहीं जानकारी तो इस बात की भी लगी है कि मध्यप्रदेश में कमलनाथ सरकार को गिरवाने में बड़ा हाथ जयराम रमेश का ही था। क्योंकि जयराम रमेश ने ही ज्योतिरादित्य सिंधिया को भला-बुरा कहा और उनको आहत कर राहुल गांधी और सोनिया गांधी से मिलने से इंकार करवाया। यही नहीं रमेश ने ही पूरी कांग्रेस पार्टी का बंटाधार कर दिया है और आने वाले समय में इस पार्टी को पूरी तरह से समाप्त करने की चाल में है। इसका सीधा सा मकसद है रमेश खुद कांग्रेस प्रमुख की सीट पर बैठकर अपने हिसाब से पार्टी का संचालन करना चाहते हैं। जयराम रमेश के अड़ियल रवैये के वजह से अब तक कई वरिष्ठ नेता पार्टी छोड़कर अलग हो चुके हैं।

मोदी बनाम कौन?

अधिकांश विपक्षी दल 2024 के लोकसभा चुनावों में केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार को हटाना चाहते हैं। अगर बीजेपी सत्ता से बाहर होती है और विपक्षी दल बहुमत हासिल करते हैं तो प्रधानमंत्री की कुर्सी पर कौन बैठेगा, इस पर फिलहाल विपक्ष की कोई पार्टी कुछ नहीं कहना चाहती। शायद, वो जानते हैं कि ये मुद्दा गतिरोध की बड़ी वजह बन सकता है। इंडिया गठबंधन के नेताओं का कहना है कि फिलहाल चेहरे से ज्यादा मुद्दे अहम हैं। विपक्षी दलों का साझा एजेंडा बीजेपी को हराना है। ऐसा नहीं है कि विपक्ष के नेताओं में पीएम पद हासिल करने की हसरत नहीं है। अरविंद केजरीवाल खुद को पीएम मोदी के लिए सबसे बड़ी चुनौती के तौर पर पेश करते रहे हैं। वो भी तब, जब लोकसभा में आम आदमी पार्टी का केवल एक सांसद है। ये सीट भी पार्टी को जालंधर सीट पर दो महीने पहले हुए उपचुनाव में हासिल हुई है। साल 2014 में जब नरेंद्र मोदी ने पहली बार गुजरात से बाहर जाकर लोकसभा चुनाव लड़ा, तब अरविंद केजरीवाल ने उन्हें वाराणसी में चुनौती दी थी। हालांकि, मोदी इस सीट पर 3.37 लाख वोटों से जीत गए थे। मोदी के खिलाफ कौन साझा उम्मीदवार होगा, इसका जवाब भी चुनाव के बाद की स्थितियों के लिए छोड़ा जाएगा।

से निकले लालू प्रसाद यादव के राजद हैं जिन्होंने मिलकर 2015 में जब भाजपा और नरेंद्र मोदी का विजय अभियान चरम पर था, तब एनडीए को करारी शिकस्त दी थी। महाराष्ट्र की राजनीति के दोनों दिग्गज शरद पवार और उद्धव ठाकरे हैं जिन्हें राज्य और केंद्र में सत्तारूढ़ भाजपा गठबंधन के खिलाफ महाराष्ट्र विकास अघाड़ी की धुरी माना जाता है। अखिलेश यादव भी इंडिया गठबंधन की ताकत हैं। इनके अलावा कई छोटे छोटे दल हैं जिनका कई राज्यों में आंचलिक प्रभाव है। अपने अपने प्रभाव क्षेत्रों में तो ये दल भाजपा नीत एनडीए से लड़ सकते हैं लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर ये कांग्रेस के साथ मिलकर मुकाबले में उतरने

दक्षिण के कांग्रेसियों ने डुबोया कांग्रेस को

मौजूदा समय में कांग्रेस की जो स्थिति है वह किसी से छुपी नही है। तिनके की तरह उसका कुनबा बिखर रहा है। पार्टी के वरिष्ठ नेता और लोग कांग्रेस से दूरी बना रहे हैं। पिछले एक दशक में जिस भारत ने आकार लिया है, उसमें कांग्रेस शासित भारत इतना पीछे छूट गया है कि पार्टी के अस्तित्व तक पर संकट खड़ा हो गया है और सत्ता में लौटना तो दूर की बात है, उसके मुख्य विपक्षी दल तक बने रहने की संभावनाएं धूमिल हो रही हैं। 2024 का लोकसभा चुनाव कांग्रेस के लिए बेहद अहम हैं। 2014 में सत्ता से बाहर हुई कांग्रेस लगातार 02 लोकसभा आम चुनाव हार चुकी है और कई राज्यों में सरकारें गंवा चुकी है। ऐसे में 2024 में होने वाले आम चुनाव उसके लिए बेहद अहम हैं। क्योंकि यह उसके अस्तित्व की लड़ाई है। हालांकि यह कम ही समझ आ रहा है कि वह लोकसभा चुनाव में एक दमदार पार्टी की तरह चुनाव मैदान में है। इतिहास के सबसे खराब समय से कांग्रेस जूझ रही है। पार्टी के दिग्गज नेता लगातार पार्टी को छोड़कर जा रहे हैं। पार्टी का ग्राफलगातार गिरता जा रहा है। जिस पार्टी ने एक समय पूरे देश पर एकछत्र राज किया हो वह पार्टी आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। वह अर्श से फर्श पर पहुंच चुकी है। हालांकि यह बात भी सच है कि कांग्रेस की इस दुर्गति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। किसी ने कभी कल्पना नहीं की थी कि वह अपनी विचारधारा में इस तरह से परिवर्तन कर लेगी। दरअसल आज के कांग्रेस पार्टी के वो नेता जो आलाकमान की खास कोटरी में आते है या आलाकमान के आफिस समझते हैं वो वामपंथी विचारधारा से आते हैं। कहने का मतलब विचारधारा कोई भी खराब नहीं होती जैसे वामपंथी, दक्षिण पंथी हो या समाजवादी पर जिस मूल सिद्धांत के उपर कांग्रेस पार्टी की नींव खड़ी है उसे ऐसे नेताओं ने अपनी विचारधारा थोप कर पार्टी को कमजोर कर दिया है। पार्टी के अंदर मौजूद कुछ नेता पार्टी को गर्त में पहुंचाने का काम कर रहे हैं। केरल कैडर के खास नेता जो दक्षिण भारत से आते हैं वो उत्तर भारत की नब्ज टटोलने में नाकाम रहे हैं। साथ ही उनके लाए हुए यह नेता जब वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं की लगातार अपमानित करने का कार्य कर रहे हैं। जिस कारण भी पार्टी का पतन हो रहा है। जिस बात को गांधी परिवार समझ नहीं पा रहा है। कांग्रेस पार्टी के भीतर उत्तर भारत बनाम दक्षिण भारत चल रहा है। पार्टी में उत्तर भारत और दक्षिण भारत के नेताओं के बीच संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। सारे महत्वपूर्ण पदों पर दक्षिण के नेता बैठे हुए हैं। इसलिए पार्टी ने इस तरह का फैसला लिया है। जिसका उनको नुकसान झेलना पड़ सकता है। ये नेता अपने फैसलों को पार्टी पर लाद रहे हैं। अब चाहे फायदे हों या नुकसान। इससे इन दक्षिणी नेताओं को कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। अयोध्या में भगवान श्रीरामलला की प्राण प्रतिष्ठा समारोह के बाद ये मामला और उभरा है।

की तैयारी कर रहे हैं। यही इरादा ही इनका हौसला है जो 2024 के चुनावी कुरक्षेत्र में इनकी ताकत बन सकता है अगर यह सब पूरी तरह एकजुट रहें। कांग्रेस समेत 26 दलों के नए गठबंधन के जन्म से लेकर राहुल गांधी की लोकसभा की सदस्यता से बर्खास्तगी और फिर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उनकी सजा पर रोक और संसद सदस्यता की बहाली से लेकर मणिपुर की हिंसा को लेकर संसद में सरकार और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की घेरेबंदी के लिए लाये गए अविश्वास प्रस्ताव तक विपक्षी इंडिया गठबंधन ने जो एकता और आक्रामकता दिखाई है, उसने सत्ताधारी एनडीए को विचलित जरूर कर दिया है। इसीलिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर भाजपा और एनडीए के हर छोटे बड़े नेता ने विपक्षी गठबंधन इंडिया को निशाना बनाना शुरू कर दिया है। पहले सत्ता पक्ष को यह भरोसा ही नहीं था कि विपक्षी दल कभी व्यवहारिक रूप से एकजुट भी हो सकेंगे। कहा जाता था

कहां पर कमजोर है विपक्ष?

ब्रांड मोदी की चुनौती विपक्ष के लिए नई नहीं है। गुजरात के सीएम से लेकर प्रधानमंत्री तक, ब्रांड मोदी विपक्ष के लिए अभेद्य किला रहा है। इसी ब्रांड के सहारे भाजपा नया वोट बैंक स्थापित करने में सफल रही है। तीसरी बार मोदी सरकार, अबकी बार चार सौ पार...लोकसभा चुनाव में जीत की हैट्रिक के प्रति मजबूत अवधारणा बनाने की रणनीति के तहत भाजपा के गढ़े ये नारे पार्टी की दूरगामी रणनीति की ओर इशारा करते हैं। इन नारों से भाजपा के रणनीतिकारों ने चुनावी बहस को एनडीए की हार-जीत से परे, गठबंधन को तीसरी और बीते दो चुनाव से बड़ी जीत हासिल करने का माहौल बनाने की दिशा में कदम बढ़ाकर विपक्ष पर मनोवैज्ञानिक बढ़त बना ली है। बीते दो मुकाबलों की तरह इस बार भी एक तरफ अब तक अजेय ब्रांड मोदी है, तो दूसरी ओर एक साथ आने की कोशिश में लगातार बिखरता विपक्ष है। हिंदुत्व व राष्ट्रवाद की जमीन और मजबूत होने के बीच भाजपा वोट प्रतिशत और सीटें बढ़ाने के लिए एक-एक कर पुराने सहयोगियों को साध रही है।

नहीं बढ़ा पाये मत प्रतिशत

विपक्ष की अगुवाई कर रही कांग्रेस मत प्रतिशत नहीं बढ़ा पा रही। 2009 में कांग्रेस को 28.55 प्रतिशत मत (11.92 करोड़ वोट) मिले। वर्ष 2014 में यह घटकर 19.31 प्रतिशत (10.69 करोड़ मत) रहा गया। 2019 में थोड़ा बढ़कर 19.6 प्रतिशत (11.90 करोड़ मत) हो गया। कांग्रेस का मत प्रतिशत स्थिर रहा, मगर भाजपा का तेजी से बढ़ा। 2019 में भाजपा को 37.7 प्रतिशत वोट मिले। कांग्रेस से करीब दो गुना। यह स्थिर मत प्रतिशत कांग्रेस की बेहाली दूर करने में कोई मदद नहीं कर पा रहा है।

कमजोर संगठन

एनडीए व इंडिया ब्लॉक में सबसे बड़ा अंतर जमीनी स्तर पर संगठन का कामकाज पैदा कर रहा है। मोदी-शाह युग के साथ भाजपा ने बूथ स्तर पर प्रबंधन पर सर्वाधिक मेहनत की है। वहीं, विपक्षी गठबंधन में शामिल आप, डीएमके के अलावा किसी दल ने बूथ स्तर पर बेहतर प्रबंधन नहीं किया है। कांग्रेस ने किसी भी राज्य में संगठन मजबूत करने के लिए मेहनत नहीं की है। राजनीतिक विश्लेषक मानते हैं कि विपक्ष ब्रांड मोदी के खिलाफ अपने सही मुद्दे तय करने के बदले पीएम मोदी पर व्यक्तिगत हमले को एजेंडा बनाकर हार का सामना कर रहा है। तथ्यात्मक बात यह है कि पीएम के रूप में दो कार्यकाल पूरा करने के बाद भी मोदी की लोकप्रियता में कहीं कमी नहीं दिख रही है।

कि ममता बनर्जी, अरविंद केजरीवाल, अखिलेश यादव कभी कांग्रेस के साथ जा ही नहीं सकते। लेकिन जब पटना में सभी दलों की बैठक हो गई। बेंगलुरु की बैठक के बाद जिस तरह कांग्रेस और इंडिया गठबंधन के सभी दलों ने संसद में आप का साथ दिया

चुनाव प्रचार के चेहरे

नरेंद्र मोदी

2014 से चुनाव कहीं भी हों भाजपा के लिए चेहरा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ही होते हैं। इस चुनाव में भी भाजपा के लिए प्रचार का सबसे बड़ा चेहरा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ही हैं। चुनाव की तारीखों के एलान से पहले ही प्रधानमंत्री ताबड़तोड़ करोड़ों की योजनाओं का उद्घाटन और शिलान्यास कर चुके हैं। इस दौरान उन्होंने कई रैलियों को भी संबोधित किया।

राहुल गांधी

2019 के लोकसभा चुनाव में राहुल गांधी कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। उस चुनाव में भी राहुल ने पार्टी के लिए जमकर प्रचार किया था। इस वक्तमल्लिकार्जुन खरगे पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। इसके बाद भी राहुल ही पार्टी का सबसे बड़ा चेहरा हैं। विपक्ष की ओर से सबसे बड़े चेहरे भी राहुल ही हैं। इस चुनाव में भी कांग्रेस के चुनाव प्रचार के सबसे बड़े चेहरे राहुल गांधी और प्रियंका गांधी ही हैं।

ममता बैनर्जी

तृणमूल कांग्रेस प्रमुख और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी राज्य में पार्टी के चुनाव प्रचार का सबसे बड़ा चेहरा हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में टीएमसी को 22 सीटें मिलीं थीं। 42 सीटों वाला पश्चिम बंगाल चुनाव तारीखों से एलान से पहले ही सियासी संग्राम का केंद्र बना हुआ है।

अखिलेश यादव

लोकसभा सीटों के लिहाज से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा सूबा है। राज्य में 80 लोकसभा सीटें हैं। यहां की मुख्य विपक्षी पार्टी समाजवादी पार्टी के लिए प्रचार का चेहरा पार्टी अध्यक्ष अखिलेश यादव हैं।

उससे यह एकजुटता और मजबूत हो गई। विपक्षी दलों की इस नवोदित एकजुटता से भाजपा को फिर पुराने एनडीए को सक्रिय करने की जरूरत आ पड़ी और जिस दिन विपक्षी दलों की बैठक बेंगलूरु में हो रही थी, उसी दिन दिल्ली में एनडीए की बैठक बुलाई गई जिसमें विपक्ष के 26 के मुकाबले 38 दलों का गठबंधन पेश किया गया।

2024 की चुनावी लड़ाई एनडीए बनाम

चुनाव प्रचार के मुद्दे

मोदी की गारंटी

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने स्पष्ट संकेत दिया है कि इस चुनाव में उनके प्रचार अभियान का मुख्य विषय मोदी की गारंटी रहने वाला है। पीएम मोदी और भारतीय जनता पार्टी के अनुसार मोदी की गारंटी युवाओं के विकास, महिलाओं के सशक्तीकरण, किसानों के कल्याण और उन सभी हाशिए पर पड़े और कमजोर लोगों के लिए एक गारंटी है, जिन्हें दशकों से नजरअंदाज किया गया है।

कांग्रेस की न्याय गारंटी

देश की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस को हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक और तेलंगाना के राज्य चुनावों में कुछ हद तक फायदा होता दिखा, जब उसने लोगों को गारंटी दी। अब लोकसभा चुनावों के लिए पार्टी ने युवाओं, किसानों, महिलाओं, श्रमिकों और आदिवासी समुदाय के लिए न्याय सुनिश्चित करने के साथ-साथ भागीदार न्याय के उद्देश्य से अपनी 05 न्याय गारंटी की बात की है। मणिपुर से मुंबई तक राहुल गांधी की अगुवाई वाली भारत जोड़ो न्याय यात्रा के दौरान लोगों के सामने न्याय की गारंटी पेश की गई है। कांग्रेस का घोषणा पत्र इन गारंटी के इर्द-गिर्द तैयार किया है और पार्टी अपना अभियान इन्हीं गारंटी के इर्द-गिर्द तैयार कर रही है।

बेरोजगारी और महंगाई

कांग्रेस सहित इंडिया गठबंधन बेरोजगारी और आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती कीमतों का मुद्दा उठाता रहा है। उन्होंने बार-बार कहा है कि नौकरियों की कमी सबसे बड़ा मुद्दा है और उन्होंने इस मुद्दे पर सरकार को घेरने की कोशिश भी की है। भाजपा ने रोजगार वृद्धि और तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था का हवाला देते हुए पलटवार किया है। इस चुनावी मौसम में रोज़ी-रोटी से जुड़े इन मुद्दों पर बहस तेज होगी।

इंडिया होकर आम तौर पर दो ध्रुवीय होती दिख रही है। जहां एनडीए को नरेंद्र मोदी की सरकार के कामकाज और जनता के लिए शुरु की गई अनेक योजनाओं की सफलता पर विश्वास है तो इंडिया गठबंधन का दावा है कि कमर तोड़ महंगाई, जबर्दस्त बेरोजगारी, पटरी से उतरी अर्थव्यवस्था, किसानों की दुर्दशा, पुरानी पेंशन योजना, सीमाओं पर चीनी अतिक्रमण, कोरोना से निबटने में

नाराज नेताओं को मनाने का प्रयास तक नहीं किया कांग्रेस ने

प्रतिदिन कांग्रेस का कोई न कोई वरिष्ठ नेता पार्टी को छोड़ रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर इन नेताओं से संवाद क्यों नहीं कर रही है। क्यों उनके मन की बात को नहीं सुन रही है। आखिर कारण क्यों पता नहीं किये जा रहे हैं। ये ऐसे सवाल हैं जिनका जवाब सब कोई जानना चाहता है। हम देख रहे हैं कि नेता पार्टी छोड़ते जा रहे हैं और अभी तक किसी से भी यह नहीं पूछा जा रहा है कि आखिर किस कारण पार्टी छोड़ रहे हैं और उनकी समस्या को हल नहीं किया जा रहा है। ऐसा लगता है कि कांग्रेस को इन नेताओं की जरूरत ही नहीं है। राहुल गांधी को इस बात से कोई फर्क ही नहीं पड़ रहा है। इससे राहुल गांधी की लीडरशिप पर भी सवाल खड़े हो रहे हैं। कह सकते हैं कि राहुल का यह कमजोर व्यवहार ही है। नाराज नेताओं मनाने तक का प्रयास नहीं किया जा रहा है। मध्यप्रदेश में हमने देखा है कि कैसे ज्योतिरादित्य सिंधिया ने एक झटके में पार्टी से नाता तोड़ दिया और कमलनाथ सरकार को गिरा दिया। यहां पार्टी हाईकमान चाहता तो सिंधिया को रोक सकता था और कमलनाथ सरकार पूरे पांच साल राज करती और प्रदेश में अलग ही स्थिति होती। नाराज नेताओं ने पार्टी को छोड़ने का मन बना लिया लेकिन घमंड में डूबी कांग्रेस पार्टी ने कभी भी एक भी नेता को मनाने का फैसला नहीं किया। सूत्रों के अनुसार नाराज व्यक्तियों को न मनाने का फैसला जयराम रमेश का है। उन्होंने ने भी पार्टी के आला पदाधिकारियों को नाराज व्यक्तियों को मानने को लेकर इंकार किया था। उनका मानना था कि अगर कोई जाए तो पार्टी को कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन कुछ ही वरिष्ठ नेताओं के जाने से ही पार्टी आज पूरी तरह से बैकफुट पर आ गई है और पार्टी का अस्तित्व खतरे में है। वर्ष 2019 से लेकर अब तक कांग्रेस के दर्जनों वरिष्ठ नेता पार्टी को अलविदा कह चुके हैं। इसकी शुरु आत मिलिंद देवड़ा से हुई थी। जहां मिलिंद देवड़ा ने राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा के दौरान ही पार्टी छोड़ने का फैसला कर लिया था। आम चुनाव से ठीक पहले मिलिंद देवड़ा जैसे बड़े नेता का पार्टी को छोड़कर जाना कांग्रेस को ज्यादा नुकसान पहुंचा सकता है। खास बात ये है कि मिलिंद देवड़ा कांग्रेस छोड़कर जाने वाले पहले नेता नहीं हैं। कांग्रेस के कद्दावर नेता और पूर्व केंद्रीय मंत्री कपिल सिब्बल ने 16 मई 2022 को कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया था। कांग्रेस के दिग्गज नेता गुलाम

सरकार का कुप्रबंधन, जांच एजेंसियों का दुरूपयोग, अग्निवीर योजना जैसे मुद्दे सरकार के सारे आयोजनों के प्रभाव पर भारी पड़ेंगे।

भाजपा पिछले दस सालों से केंद्र में सत्ता में है और उसने जो नीतियाँ लागू की हैं, उनका देश पर भयावह प्रभाव पड़ा है। चाहे वह नोटबंदी हो, जीएसटी हो या रातोंरात लागू किया गया कोरोना लॉकडाउन, सबसे

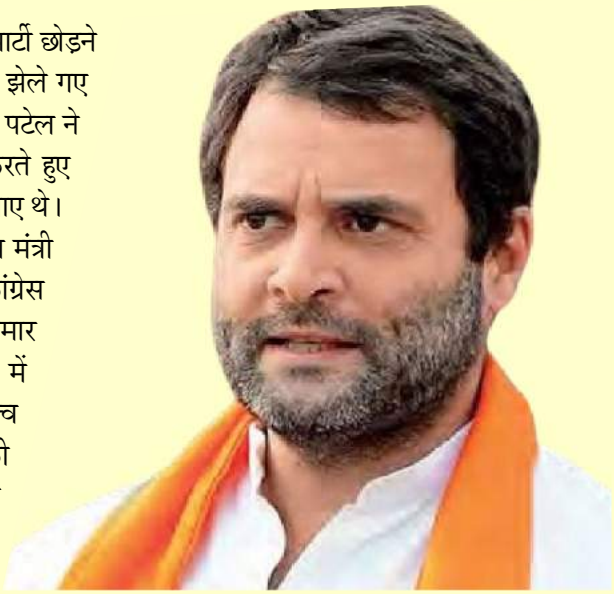

नबी आज़ाद ने 2022 में पार्टी से इस्तीफा दे दिया था। ये वह दौरान पार्टी छोड़ने वाले सबसे बड़े नेताओं में से एक थे। इस्तीफा 2022 में पार्टी द्वारा झेले गए सबसे बड़े निष्कासनों में से एक था। गुजरात के पाटीदार नेता हार्दिक पटेल ने मई 2022 में अपने त्याग पत्र के साथ राहुल गांधी को नाराज करते हुए कांग्रेस छोड़ दी थी। राहुल गांधी हार्दिक को 2019 में पार्टी में लेकर आए थे। अपने त्याग पत्र के बाद वह बीजेपी में शामिल हो गए थे। पूर्व केंद्रीय मंत्री अश्विनी कुमार ने पंजाब चुनाव से कुछ दिन पहले फरवरी 2022 में कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया था। पार्टी के एक अनुभवी नेता रहे अश्विनी कुमार 2019 के चुनावों में हार के बाद पार्टी छोड़ने वाले पहले नेताओं में शामिल थे। सुनील जाखड़, जिन्होंने पंजाब कांग्रेस इकाई का नेतृत्व किया था, ने 2022 में तत्कालीन मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी की आलोचना करने के लिए नेतृत्व द्वारा कारण बताओ नोटिस मिलने के बाद पार्टी छोड़ दी थी। पूर्व केंद्रीय मंत्री आरपीएन सिंह जनवरी 2022 को कांग्रेस छोड़कर भाजपा में शामिल हो गए थे। जितिन प्रसाद, जो पहले केंद्रीय मंत्री भी रहे थे और राहुल गांधी के बेहद करीबी मानें जाते थे, ने 2021 में कांग्रेस छोड़ दी थी। इसके बाद वो भी बीजेपी में शामिल हो गए थे। कांग्रेस के पूर्व विधायक अल्पेश ठाकोर ने जुलाई 2019 में दो राज्यसभा सीटों के लिए उपचुनाव में पार्टी उम्मीदवार के खिलाफमतदान करने के बाद पार्टी छोड़ दी थी कांग्रेस के दिग्गज नेता व पूर्व केंद्रीय मंत्री एके एंटनी के बेटे अनिल एंटनी ने पिछले साल जनवरी में पार्टी छोड़ दी और अगले महीने भाजपा में शामिल हो गए थे। राहुल गांधी के नेतृत्व में वर्ष 2014 का लोकसभा चुनाव हारने के बाद कांग्रेस में असंतुष्ट नेताओं की संख्या और पार्टी छोड़ने का जो सिलसिला शुरूहुआ, वो अब तक जारी है। 21 जुलाई 2014 को हिमंता बिस्व सरमा, कांग्रेस छोड़ने वाले पार्टी के पहले बड़े नेता थे। पहले सबसे बड़ा झटका टॉम वडक्कन और दूसरा बड़ा झटका ज्योतिरादित्य सिंधिया के तौर पर लगा था। अशोक चव्हाण, आचार्य प्रमोद कृष्णम, अर्जुन मोढवाडिया, जितिन प्रसाद, आरपीएन सिंह, सुरेश पचौरी, दीपक सक्सेना, संजय शुक्ला, विशाल पटैल जैसे तमाम नेता हैं जो इस समय पार्टी को छोड़ चुके हैं। पिछले आठ वर्षों में 400 से ज्यादा नेता कांग्रेस का हाथ छोड़ चुके हैं। इनमें 33 बड़े नेताओं का नाम शामिल हैं। वर्ष 2014 लोकसभा चुनाव के बाद कांग्रेस के ही सबसे ज्यादा नेताओं ने पार्टी छोड़ी है। वर्ष 2014 से सितंबर 2021 तक कांग्रेस के 222 ऐसे नेताओं ने पार्टी को अलविदा कहा, जो चुनावी उम्मीदवार थे। इस दौरान कांग्रेस के 177 सांसद और विधायकों ने भी पार्टी से इस्तीफा दे दिया। इन दस वर्षों में कांग्रेस के 399 नेताओं ने पार्टी छोड़ी। इस रिपोर्ट के बाद भी 16 बड़े नेता, अपने समर्थकों संग कांग्रेस का हाथ झटक चुके हैं। मतलब आठ वर्षों में ये संख्या तकरीबन 450 पहुंच चुकी है।

आम जनता की खासी फजीहत हुई ! देश में सरकारें और ज्यादा तानाशाह होती जा रही हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं पर तरह-तरह की रोकें लगाई जा रही हैं। विपक्षी पार्टियों ने इंडिया गठबंधन का गठन किया। ऐसा कहा जा रहा था कि यह गठबंधन हमारे संविधान में निहित आईडिया ऑफ़ इंडिया को संरक्षित रखने का प्रयास करेगा। लोकसभा चुनाव के सिलसिले में इस गठबंधन से बहुत

क्या लोकसभा चुनाव में दक्षिण का किला भेद पाएगी बीजेपी?

लोकसभा चुनाव 2024 के लिए सभी पार्टियों ने तैयारी शुरू कर दी है। भारतीय जनता पार्टी ने अपने सहयोगी दलों के साथ मिलकर 400 से ज्यादा सीटें जीतने का लक्ष्य रखा है, लेकिन सत्ताधारी गठबंधन के लिए यह आसान नहीं होगा। दक्षिण भारत के पांच राज्यों में पार्टी की हालत बेहद खराब है। ऐसे में सिर्फ हिंदी भाषी राज्यों के दम पर 400 से ज्यादा सीटें जीत पाना पीएम मोदी की पार्टी के लिए आसान नहीं होगा। हिंदी भाषी राज्यों में पार्टी की पकड़ बेहद मजबूत है। इसी के दम पर बीजेपी दो बार से अपने दम पर लोकसभा चुनाव में बहुमत हासिल कर रही है, लेकिन गठबंधन के साथ भी 400 से ज्यादा सीटें हासिल करने के लिए बीजेपी को दक्षिण भारत में अच्छा प्रदर्शन करना होगा। अब तक सिर्फ एक ही बार कोई पार्टी 400 से ज्यादा सीटें जीती है। 1984 में कांग्रेस ने ऐसा किया था, लेकिन तब इंदिरा गांधी की हत्या के बाद लोगों ने भावुक होकर मतदान किया था। दक्षिण भारत में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, केरल, तेलंगाना और तमिलनाडु को मिलाकर कुल पांच राज्य शामिल हैं। पहले इन राज्यों में बीजेपी की मौजूदा स्थिति जान लेते हैं। बीजेपी को इस बात का एहसास है कि वो बिना दक्षिण राज्यों के समर्थन से 400 पार नहीं कर सकती है। इसलिए प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी ताकत दक्षिण भारत में झोंक दी है। पीएम मोदी धुआंधार रैलियां कर रहे हैं। बीजेपी के लिए दक्षिण भारतीय राज्यों में जीत हासिल कर पाना बेहद मुश्किल होगा। अगर इन राज्यों में एनडीए गठबंधन को अच्छा प्रदर्शन करना है तो बीजेपी के अलावा भी अन्य दलों को अच्छा प्रदर्शन करना होगा। अबकी बार, चार सौ पार। यही है 2024 के लोकसभा चुनाव के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का सूत्र वाक्य, लेकिन ये होगा कैसे? क्योंकि दक्षिण भारत के पांच राज्यों को जीते बिना चार सौ सीटों तक पहुंचना बहुत मुश्किल होगा। शायद इसीलिए अबकी बार, चार सौ पार के नारे के साथ प्रधानमंत्री मोदी का विजय रथ दक्षिण भारत में निकल चुका है। 400 के

उम्मीदें थीं। मगर ऐसा लगता है कि 2023 के विधानसभा चुनावों के नतीजों ने इन उम्मीदों पर पानी फेर दिया है। कांग्रेस के राज्य-स्तरीय नेतृत्वों ने मनमानी करते हुए गठबंधन के अन्य दलों की उपेक्षा की। इससे दूसरी पार्टियाँ काफी नाराज़ हो गईं और गठबंधन के और मज़बूत होने की राह बाधित हो गयी। कांग्रेस केवल तेलंगाना में जीत हासिल कर सकी और हिंदी पट्टी के

टारगेट को पाने के लिए प्रधानमंत्री मोदी ने दक्षिण भारत की 129 लोकसभा सीटों फोकस बढ़ा दिया है। दक्षिण भारत के तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तेलंगाना की 129 लोकसभा सीटों में पिछली बार बीजेपी ने 29 सीटें जीती थी। इनमें 25 कर्नाटक और चार तेलंगाना की थी। 2019 के लोकसभा चुनाव में तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल की 84 लोकसभा सीटों में से बीजेपी को एक भी नहीं मिली थी। यही वजह है कि पीएम मोदी और बीजेपी दक्षिण के इन राज्यों पर ध्यान दे रही है।

दक्षिण भारत में इंडिया काफी आगे

उत्तर भारत में बीजेपी की राह जितनी आसान दिख रही है, दक्षिण भारत में उतनी ज्यादा ही चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। बात चाहे केरल की हो, तमिलनाडु की हो, तेलंगाना की हो या फिर आंध्र प्रदेश की, बीजेपी कहीं पर भी अपने दम पर मजबूत दिखाई नहीं दे रही है। उसकी कोशिश जरूर है कि इस बार केरल में खाता खोला जाए और तमिलनाडु में भी कुछ सीटों पर अच्छा प्रदर्शन हो, लेकिन जमीन पर ज्यादा समीकरण बदलते दिख नहीं रहे हैं। तमाम सर्वे भी इसी ओर इशारा कर रहे हैं। बीजेपी के लिए एक उम्मीद की किरण इस बार आंध्र प्रदेश से निकल रही है जहां पर उसने चंद्रबाबू नायडू की पार्टी के साथ गठबंधन कर लिया है। इसके अलावा कर्नाटक में जेडीएस से हाथ मिलाकर वो सभी सीटों पर मजबूत दावेदारी पेश कर रही है। लेकिन तमिलनाडु में इंडिया की तरफ से डीएमके, केरल में अपने दम पर यूडीएफ और तेलंगाना में कांग्रेस काफी मजबूत दिखाई दे रही है। ऐसे में यहां से ज्यादा से ज्यादा सीटें इंडिया गठबंधन अपनी झोली में कर सकती है।

कर्नाटक

राज्य की 28 लोकसभा सीटों में 25 पर बीजेपी का कब्जा है। राज्य में सिद्धारमैया की अगुआई में कांग्रेस की सरकार है। कर्नाटक में बीजेपी कुछ साल पहले सत्ता में थी। अभी कांग्रेस की सरकार है, लेकिन यहां भी लोकसभा चुनाव में बीजेपी को वोट मिल सकते हैं। हालांकि, पिछले चुनाव की तुलना में इसमें कमी आने के आसार हैं। क्योंकि राज्य में कांग्रेस की सरकार है। ऐसे में आमतौर पर सत्ताधारी पार्टी की सीट बढ़ती हैं। कर्नाटक में बीजेपी का वोट शेयर 51.75 फीसदी से बढ़कर 57.27 फीसदी होता दिख रहा है। वहीं, कांग्रेस का वोट शेयर 32.11 फीसदी से घटकर 28.45 फीसदी हो सकता है। जनता दल का वोट शेयर 9.74 फीसदी से कम हो कर सिर्फ 1 फीसदी रह सकता है। राज्य की 28 सीटों में से 26 सीट बीजेपी के खाते में जाती दिखाई दे रही हैं और कांग्रेस को दो सीट मिलती दिख रही हैं। इस स्थिति में बीजेपी को 3 और कांग्रेस को एक सीट का फायदा होगा।

आंध्रप्रदेश

25 में से कोई भी सीट बीजेपी के पास नहीं है। आंध्र प्रदेश में बीजेपी का टीडीपी और जन सेना पार्टी के साथ गठबंधन है। इसलिए पलनाडु की रैली में तीनों पार्टियों के नेता और कार्यकर्ता मौजूद रहे। चंद्रबाबू नायडू और पवन कल्याण के साथ आने से बीजेपी 25 सीटों वाले आंध्र प्रदेश में काफी मजबूत स्थिति में आ गई है। आंध्र में गठबंधन बनने के बाद बीजेपी की दक्षिण के इस राज्य से भी उम्मीदें बढ़ गई हैं। राज्य में वाईएसआर कांग्रेस की सरकार है। जगन मोहन रेड्डी मुख्यमंत्री हैं।

केरल

20 में से कोई भी सीट बीजेपी के पास नहीं है। राज्य में मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी की सरकार है, पिनाराई विजयन मुख्यमंत्री हैं।

तेलंगाना

13 में से **4** सीट बीजेपी के पास हैं। राज्य में कांग्रेस पार्टी सत्ता में है, रेवंथ रेड्डी मुख्यमंत्री हैं।

तमिलनाडु

39 में से कोई भी सीट बीजेपी के पास नहीं है। राज्य में डीएमके पार्टी की सरकार है। एम के स्टालिन मुख्यमंत्री हैं।

तीन राज्यों में उसे हार का सामना करना पड़ा। यह सही है कि यदि कांग्रेस का अन्य राष्ट्रीय एवं छोटे दलों के साथ गठबंधन होता तो उसका प्रदर्शन बेहतर होता। फिर भी इन राज्यों में उसकी हार का तर्कसंगत स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता। लोकसभा चुनाव के लिए अपनी रणनीति बनाते समय इस पहलू पर इंडिया गठबंधन के सदस्यों को ध्यान देना होगा। इन

प्रदेश में कांग्रेस को जीवित रखना है तो कमलनाथ को पॉवर देना होगा

देश सहित प्रदेश में भी कांग्रेस पार्टी में काफी उथल-पुथल हो रही है। एक-एक करके प्रदेश से भी दिग्गज नेता पार्टी छोड़ रहे हैं। खासकर 2023 के विधानसभा चुनाव के बाद तो स्थिति और गंभीर होती जा रही है। ऐसी ही स्थिति बनी रही तो आने वाले समय में कांग्रेस प्रदेश से समाप्त हो जायेगी। इस विकट समय में प्रदेश में केवल एक ही नेता है जो पार्टी को संगठनात्मक रूप में एक करके रख सकता है और वह नेता हैं कमलनाथ। लेकिन कांग्रेस हाईकमान ने उनकी जगह पर युवा नेता जीतू पटवारी को प्रदेश की कमान थमा दी है। हाईकमान के इस फैसले के बाद तो पार्टी की स्थिति और बदतर हो गई है। इसके साथ ही जीतू पटवारी की लीडरशिप पर भी प्रश्नचिन्ह लग गया है। वर्तमान में उनसे पार्टी संभल ही नहीं रही है। सुरेश पचौरी जैसे कद्दावर नेता को पार्टी को छोड़ना पड़ रहा है। सवाल उठता है कि क्या पटवारी की लीडरशिप में वह काबिलियत नहीं है कि वह नाराज नेताओं से बात कर उनकी नाराजगी को दूर कर सकें। अपने सीनियर नेताओं से सलाह ले सकें। चंद दिनों में लोकसभा के चुनाव है ऐसे में अगर कोई नेता पार्टी छोड़ता है तो निश्चित ही माहौल खराब होता है। हालात कुछ भी रहे हो लेकिन हमने देखा है कि कमलनाथ के समय ऐसा कम होता था। वह नाराज नेताओं से बात करते थे, उनकी नाराजगी को दूर करने का प्रयास करते थे। हम जानते हैं कि 2018 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को जो जीत मिली थी वह कमलनाथ के नेतृत्व और कुशलता के कारण मिली थी। कमलनाथ ही वह नेता रहे हैं जो तन, मन और धन से पार्टी से जुड़े हुए हैं।

परिणामों का एक पक्ष यह भी है कि अधिकांश दक्षिण भारत भाजपा मुक्त हो गया है। कुछ टिप्पणीकारों का तर्क है कि भाजपा की हिन्दू राष्ट्रवादी राजनीति के प्रति समर्थन मुख्यतः हिन्दीभाषी राज्यों तक सीमित है। कांग्रेस और अन्य दलों को इस बात तथ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि उसके तमाम दावों के बावजूद भाजपा की स्थिति बहुत मजबूत नहीं है। विपक्षी दलों को यह अहसास भी है कि भाजपा देश को हिन्दू राष्ट्र बनाने की ओर ले जाना चाहती है। वह खुलकर और दबे-छुपे ढंग से भारतीय संविधान के मूल्यों को कमजोर कर रही है। ईडी, आयकर विभाग व सीबीआई का विपक्षी पार्टियों के नेताओं को प्रताड़ित

देश के लिए अहम साबित होंगे चुनाव परिणाम

क्या बीजेपी का 400 पार का सपना होगा पूरा?

करने में जिस तरह दुरूपयोग किया जा रहा है, वह भी इन पार्टियों को एक साथ लाने में मददगार साबित हो रहा है। कांग्रेस का शीर्ष नेतृत्व, विशेषकर राहुल गाँधी और मल्लिकार्जुन खडगे, मिलकर चुनाव लड़ने के लिए ज़रूरी त्याग करने के लिए तैयार हैं। विधानसभा चुनावों में वे भले ही राज्य स्तरीय नेतृत्व को सभी पार्टियों के साथ सहयोग करने के लिए राजी न कर पाए हों लेकिन लोकसभा चुनाव में ऐसा नहीं होगा। आपको बता दें कि लोकसभा चुनाव 2024 में 96.88 करोड़ मतदाता हिस्सा लेंगे। इनमें 49.72 करोड़ पुरूष, 47.15 करोड़ महिला मतदाता हैं। इस चुनाव में राम मंदिर, विकास, परिवारवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी,

हिन्दी भाषी राज्यों में क्या है स्थिति?

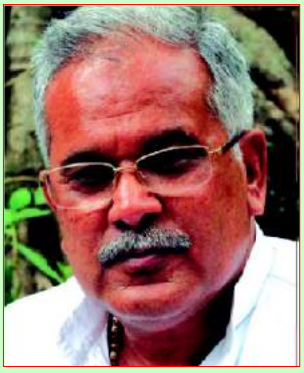

अहम साबित होंगे इन राज्यों के नतीजें

उत्तर भारत में 2014 के बाद से ही बीजेपी की एक उसकी आंधी में विपक्ष पूरी तरह साफ हो चुका है। छत्तीसगढ़ कुछ ऐसे राज्य हैं जहां पर बीजेपी को इंडिया गठबंधन जरूर बना है, लेकिन जमीन दिखाई देते हैं। उत्तर प्रदेश की बात करें तो हैं। एक तरफ इंडिया गठबंधन खड़ा है तो मैदान में उतरी है। ऐसे में जाटव और है। अब इसका कितना फायदा बीजेपी को लगाना मुश्किल है। उसे पिछड़ों का वोट मुस्लिमों को तो वो अपना कोर वोटर मान वोटबैंक में ही बीजेपी की सीधी सेंधमारी है। से पश्चिमी यूपी में भी बीजेपी बेहतर प्रदर्शन की मुकाबला वैसे तो कांग्रेस बनाम बीजेपी का है, चल रही है, ऐसे में एकजुट विपक्ष बनाम एनडीए का स्पष्ट बढ़त साफ दिखाई दे रही है। कहना चाहिए कि उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, इस समय कोई भी टक्कर देता नहीं दिख रहा है। पर समीकरण अभी भी बीजेपी के फेवर में यहां से 80 लोकसभा की सीटें निकलती दूसरी तरफ बसपा अकेले ही चुनावी मुस्लिम वोटों में बंटवारा होता दिख रहा मिल सकता है, अभी इसका अनुमान चाहिए, दलित साथ आने चाहिएं और ही रही है। लेकिन यहां पिछड़े और दलितों इसके उपर जयंत चौधरी के साथ आ जाने उम्मीद कर रही है। मध्य प्रदेश चलें तो वहां तो लेकिन क्योंकि कांग्रेस इंडिया गठबंधन के साथ ही मुकाबला कहना ज्यादा सही रहेगा। एमपी में इस समय

जातिगत जनगणना जैसे बड़े मुद्दे हावी हैं।

पिछले लोकसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र जैसे सबसे अधिक लोकसभा सीटों वाले राज्यों में कांग्रेस का प्रदर्शन कुछ खास नहीं था। उत्तर प्रदेश में 80 लोकसभा सीटे हैं। यहां कांग्रेस को एक (रायबरेली) और समाजवादी पार्टी को पाँच सीटों पर जीत मिली थी। इसके अलावा पश्चिम बंगाल में

इन राज्यों में इंडिया गठबंधन की अग्नि परीक्षा

दोनों बीजेपी और कांग्रेस के सामने कुछ चुनौतियां हैं। एक तरफ बीजेपी ने शिवराज सिंह चौहान की वजह से मोहन यादव को सीएम बना रखा है तो कांग्रेस ने भी कमलनाथ की जगह जीतू पटवारी को राज्य की कमान सौंप दी है। ऐसे में दो नए और युवा चेहरे अब एमपी की आने वाली सियासत को तय करने वाले हैं। उत्तराखंड चला जाए तो देवभूमि में इस समय बीजेपी का पला कुछ भारी दिखाई देता है। यूनिफॉर्म सिविल कोड के लागू होने के बाद से पार्टी को यहां पर महिलाओं के एकमुश्त वोट मिलने की उम्मीद है। इसके उपर ऑल वेदर चार धाम सड़क भी उसके पक्ष में माहौल बनाती दिख रही है। बीजेपी दावा कर रही है कि यहां पर वो एक बार फिर पांचों लोकसभा सीटें जीतने वाली है। इंडिया गठबंधन की अभी तक कोई खास रणनीति उत्तराखंड में दिखाई नहीं दे रही है। पीएम मोदी के गृह राज्य गुजरात में तो जनता का माहौल एकमुश्त बीजेपी के पक्ष में जाता दिख रहा है। वैसे भी विधानसभा चुनाव में जिस आंधी पर सवार बीजेपी दिखी थी, उसे देखते हुए लोकसभा चुनाव में भी ज्यादा चुनौतियां सामने आती नहीं दिख रही। यहां पर कांग्रेस ही मुख्य विपक्षी पार्टी है और आम आदमी पार्टी अभी भी सिर्फ एक विकल्प बनने की कोशिश कर रही है। लेकिन ज्यादा सीटों पर बीजेपी की स्पष्ट बढ़त दिखाई पड़ रही है। बीजेपी का वोट शेयर वैसे भी पिछले लोकसभा चुनाव में 60 फीसदी से भी ज्यादा चला गया था। इस बार पार्टी का टारगेट हर सीट पांच लाख के अंतर से जीतना है। राजस्थान की बात करें तो वहां से लोकसभा की 25 सीटें निकलती हैं। लेकिन जब से विधानसभा चुनाव में बीजेपी के तीन सांसदों को हार का सामना करना पड़ा है, पार्टी के लिए इस बार राह उतनी भी आसान नहीं रहने वाली है। तमाम ओपियनिय पोल भी बता रहे हैं कि तीन से पांच सीटों पर इंडिया गठबंधन को इस बार बढ़त मिल सकती है। इसके उपर जिस तरह से भजनलाल सरकार पर आरोप लग रहे हैं कि वो केंद्र से चल रही है, उस नेरेटिव से पार पाना भी एक चुनौती है। राजधानी दिल्ली में भी कागज पर तो इंडिया गठबंधन इस बार ज्यादा बड़ी चुनौती पेश कर सकता है। कांग्रेस और आम आदमी पार्टी के साथ आने से वोटों का बिखराव कम होगा और उसका सीधा नुकसान बीजेपी को हो सकता है। लेकिन बीजेपी को भरोसा है कि पीएम मोदी के चेहरे के सहारे वो ऐसे सभी समीकरणों को विफल कर देगी।

लोकसभा की 42 सीटे हैं, जिनमें से केवल दो ही कांग्रेस के पास हैं। पिछले लोकसभा चुनाव में टीएमसी ने 22 सीटे जीतीं लेकिन बीजेपी भी 18 सीटें जीतकर दूसरे नंबर पर थी। बंगाल में कांग्रेस, लेफ्ट और टीएमसी के बीच कड़वाहट भरे रिश्ते एक समस्या बन सकते हैं। पश्चिम बंगाल विधानसभा में अपनी मज़बूत स्थिति के बदले टीएमसी की कोशिश रहेगी कि वो राज्य में लोकसभा

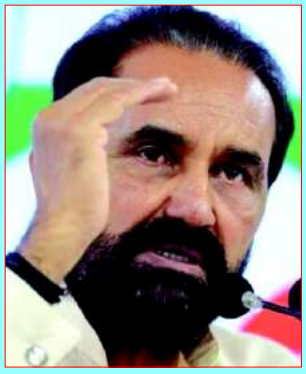

इसके उपर उसे 60 फीसदी से ज्यादा वोट शेयर की उम्मीद है। इसके ऊपर 7 में से 6 सीटों पर क्योंकि बीजेपी ने अपने उम्मीदवार ही बदल दिए हैं, ऐसे में एंटी इनकमबेंसी को भी काबू में करने की एक कवायद दिख रही है।

छत्तीसगढ़, राजस्थान और मध्यप्रदेश की अधिकतर सीटों पर बीते दो बार से बीजेपी ही काबिज़ रही है। मध्यप्रदेश के हिन्दुत्व का गढ़ होने और वहां आरएसएस का अधिक प्रभाव रहने की बात समझी जा सकती है, लेकिन 11 लोकसभा सीटों वाले छत्तीसगढ़ और 25 लोकसभा सीटों वाले राजस्थान में भी बीते दो बार से बीजेपी का ही बोलबाला रहा है। कुल 12.29 करोड़ वोटों में से 4.82 करोड़ वोट बीजेपी के खाते में पड़े और 4.92 करोड़ कांग्रेस के खाते में गए। इंडिया गठबंधन के मत प्रतिशत को देखें को 5.06 करोड़ रहा। लोकसभा चुनावों में अगर ये आंकड़े इसी तरह रहे तो बात अलग हो सकती है। चार राज्यों में तीन-एक की जीत को इस तरह पेश किया जा रहा है जैसे कांग्रेस के लिए ये बड़ा धक्का है। बीते चुनावों में बीजेपी को इन तीन हिंदी भाषी राज्यों में 3.41 करोड़ वोट मिले, वहीं कांग्रेस को 3.57 करोड़ वोट मिले। लेकिन अगर ये देखें कि किसका मत प्रतिशत कितना बढ़ा तो हम पाएंगे कि जहां बीजेपी ने एक करोड़ और मत जोड़े, वहीं कांग्रेस ने केवल 47 लाख वोट जोड़े। 2018 विधानसभा चुनावों में राजस्थान में कांग्रेस को अधिक सीटें मिलीं, लेकिन 2019 के लोकसभा चुनावों में एक भी सीट कांग्रेस नहीं जीत पाई। वहीं छत्तीसगढ़ में कांग्रेस को 2018 के विधानसभा चुनावों में 10 फीसदी अधिक वोट मिले थे, लेकिन लोकसभा चुनावों में वो केवल दो सीटें ही अपने नाम कर पाई। वहीं लोकसभा चुनावों में बीजेपी का वोट शेयर लगातार बढ़ता रहा है। 2009 में 18.8 फीसदी, 2014 में 31 फीसदी और 2019 में 37.70 फीसदी है। वहीं कांग्रेस का वोट शेयर कम हुआ है। वहीं विधानसभा चुनाव और लोकसभा चुनावों के मुद्दे और चेहरे अलग-अलग होते हैं। यहां चेहरा महत्वपूर्ण होता है।

विधानसभा चुनाव में तो जीती कांग्रेस लेकिन लोकसभा में हारी

चुनाव की अधिक से अधिक सीटों को अपने पाले में रखे। 2019 को आए चुनाव नतीजों में भाजपा को 303 सीटें मिलीं थीं। भाजपा 543 सदस्यीय लोकसभा में बहुमत के आंकड़े 272 से काफी आगे थी। इस जीत के साथ पार्टी ने लगातार दूसरी बार सरकार बनाई थी। मुख्य विपक्षी कांग्रेस को 52 सीटों से संतोष करना पड़ा था।

बिहार और पश्चिम बंगाल में कैसा होगा खेल?

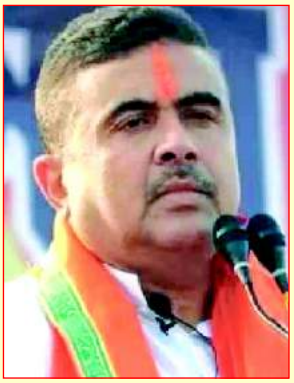

अब अगर बिहार का रूख किया जाए तो वहां पर नीतीश कुमार की वजह से जमीन पर स्थिति काफी हद तक बदली है। यहां पर पहले इंडिया गठबंधन ज्यादा मजबूत बताया जा रहा था, लेकिन जब नीतीश के एनडीए के साथ आने से फिर कुर्मी, कुशवाहा और अति पिछड़ा वोट एनडीए के साथ जा सकता है। दूसरी तरफ महागठबंधन मुस्लिम और यादव वोटों पर ज्यादा निर्भर है। यहां की 40 सीटों पर लड़ाई तो दिलचस्प रहने वाली है, लेकिन आंकड़े बताते हैं कि जब दो बड़े दल बिहार में साथ मिलते हैं, नतीजे भी उनके पक्ष में रहते हैं। पश्चिम बंगाल की बात करें तो यहां पर इंडिया गठबंधन में बिखराव हुआ है। पहले माना जा रहा था कि कांग्रेस भी टीएमसी के साथ आएगी, लेकिन ममता ने सभी सीटों पर अपने प्रत्याशी उतार दिए। ऐसे में एक बार फिर मुकाबला मुख्य रूप से टीएमसी बनाम बीजेपी का रहने वाला है, इसके उपर लेफ्ट भी कांग्रेस के साथ जाएगी, इस पर सस्पेंस है। ऐसे में वोटों का बिखराव एक बड़ा फैक्टर बन सकता है। इसके उपर सीएए लागू होने से मतुआ समुदाय भी बीजेपी के पक्ष में माहौल बना सकता है। ऐसे में काटे की टक्कर यहां देखने को मिलेगी।

वहीं, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) को 24 सीटें मिली थीं। वाईएसआरसीपी और टीएमसी को 22-22 सीटें जीतने में सफल रहीं थीं।

विपक्ष को मोदी पर व्यक्तिगत हमले का नतीजा भुगतना पड़ा है। फिर भी वह इससे बाज नहीं आ रहा। मोदी ने हर व्यक्तिगत हमले को ही हथियार बनाकर विपक्ष का दम फुला दिया। 2014 में मोदी को चाय वाला कहकर और जाति का मुद्दा उठाने से लेकर 2019 में राफेल सौदे में चौकीदार चोर है का नारा गढ़ने वाले विपक्ष को इसकी कीमत चुकानी पड़ी। मोदी के सीएम रहते भाजपा ने विपक्ष के हमले को हिंदुत्व पर हमला बताया, जबकि केंद्र में आने के बाद इसे गरीबों का मजाक उड़ाने से जोड़ा। इस बार राजद सुप्रीमो के मोदी के परिवारविहीन होने के बयान को भाजपा ने मोदी का परिवार अभियान के जरिये ध्वस्त करने की रणनीति बनाई है।

देश में मोदी लहर, मगर डगर नहीं आसान

बीते दो चुनावों में 15 करोड़ से अधिक बढ़ गए भाजपा के मत

ब्रांड मोदी की चुनौती विपक्ष के लिए नई नहीं है। गुजरात के सीएम से लेकर

बीजेपी के चुनावी मुद्दे...

लोकसभा चुनाव में भाजपा के चुनावी मुद्दों में राम मंदिर निर्माण से लेकर अनुच्छेद 370 की समाप्ति, तीन तलाक के विरूद्ध कानून, नारी शक्ति वंदन अधिनियम और नागरिकता संशोधन अधिनियम जैसे मुद्दे हैं। मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल में लिए गए इन ऐतिहासिक फैसलों से भाजपा ने अपना चुनावी माहौल सजाकर रखा है, जिन्हें मोदी सरकार रामबाण के समान मान रही है। भारतीय जनता पार्टी के चुनाव प्रचार अभियान में आगामी लोकसभा चुनाव में मोदी की गारंटी की गूंज शामिल रहेगी, जिसके माध्यम से मोदी सरकार की दृढ़ इच्छाशक्ति तथा बहुमत वाली सरकार की मजबूती का भी संदेश जाता है। भाजपा ने वैसे तो अपनी 10 साल की उपलब्धियों को गिनाया है, लेकिन बीते लोकसभा चुनाव की तुलना में मोदी सरकार इस बार ज्यादा बड़ी उपलब्धियों से लैस दिखाई दे रही है।

अनुच्छेद 370, CAA और समान नागरिक संहिता

ये तीनों मुद्दे भाजपा के लंबे समय से किए गए वादों में शामिल रहे हैं। भाजपा ने संशोधित नागरिकता अधिनियम, 2019 के क्रियान्वयन और जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 को निरस्त करने की अपनी उपलब्धि को पेश करना जारी रखा है। भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा कानून तैयार करने के अपने उद्देश्य के अग्रदूत के रूप में उत्तराखंड में भी समान नागरिक संहिता पर एक कानून पारित किया है। मोदी सरकार ने इन कदमों से यह दिखाने का प्रयास किया है कि वो जो कहती है वो करती है। CAA इसके अधिनियम के तहत केंद्र सरकार पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से आए अल्पसंख्यक यानी हिंदू, सिख, जैन, पारसी और ईसाई शरणार्थियों को नागरिकता देना चाहती है। हालांकि इस अधिनियम में उन देशों के बहुसंख्यक यानी मुस्लिम शामिल नहीं है, इसलिए इसे मुस्लिम विरोधी घोषित कर विपक्षी दल तूल देना चाहते हैं। साल 2019 को संसद से पारित हो चुके इस अधिनियम को लेकर केंद्र सरकार ने अधिसूचना जारी दी है।

प्रधानमंत्री तक, ब्रांड मोदी विपक्ष के लिए अभेद्य किला रहा है। सीएम पद की शपथ लेने के बाद गुजरात में 2012 तक तो 2014 से केंद्र में कांग्रेस को लगातार मुंह की खानी पड़ी है। इसी ब्रांड के सहारे भाजपा नया वोट बैंक स्थापित करने में सफल रही है। वर्ष 2009 में जब भाजपा लोकसभा चुनाव हारी, तब उसे महज 7.84 करोड़ वोट मिले थे। हालांकि मोदी-शाह युग की

अयोध्या का राम मंदिर

भाजपा के सबसे प्रमुख मुद्दों की बात करें तो अयोध्या में राम मंदिर निर्माण का उल्लेख होना स्वाभाविक है। पिछली सदी के आठवें-नौवें दशक से भाजपा राम मंदिर को चुनावी एजेंडे में रखकर चल रही थी। आखिरकार सुप्रीम कोर्ट के फैसले से नवंबर 2019 में तब राम मंदिर निर्माण का रास्ता साफ हुआ तब भाजपा वर्ष 2019 में दोबारा सरकार बना चुकी थी। 5 अगस्त, 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मंदिर का भूमिपूजन किया और 22 जनवरी, 2024 को मोदी ने ही प्रभु श्रीराम के बालक रूप की प्राण-प्रतिष्ठा की। एक समय राम मंदिर आंदोलन को भाजपा की कमंडल की राजनीति घोषित कर दिया गया था और इससे सामना करने के लिए गैर भाजपाई दलों ने मंडल आयोग की रिपोर्ट का सहारा लिया था। अब जिस तरह से कांग्रेस के साथ अन्य विपक्षी दल जाति आधारित जनगणना का राग अलाप रहे हैं, उसमें भी मंडल बनाम कमंडल का सोच ही दिखाई देती है। भाजपा ने रामलला प्राण-प्रतिष्ठा समारोह के उल्लास को गली-गली और घर-घर में पहुंचाकर संदेश दे दिया है कि रामलला हम आएंगे, मंदिर वहीं बनाएंगे का संकल्प सिद्ध कर दिया है। बीते 22 जनवरी को अयोध्या में राम मंदिर प्राण प्रतिष्ठा समारोह को भाजपा ने जबरदस्त उत्साह के साथ मनाया। भाजपा नेताओं ने सदियों पुराने सपने को साकार करने का श्रेय प्रधानमंत्री मोदी को दिया है। इस अवसर पर हिंदी भाषी क्षेत्र के अधिकांश हिस्सों में भगवा झंडे फहराए गए और इसका प्रभाव बड़े पैमाने पर महसूस किया जा सकता है। यहां तक कि विपक्षी नेता भी मानते हैं कि राम मंदिर से भाजपा को उत्तर भारत में फायदा हुआ है। विश्लेषकों का मानना है कि भाजपा को कम से कम 370 सीटें मिलने का ज्यादातर भरोसा इसी 'राम मंदिर लहर' से पैदा हुआ है।

एक विधान, एक निशान, एक प्रधान

भाजपा के चुनावी एजेंडे में जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 की समाप्ति हमेशा शामिल रही। भाजपा इस बार लोकसभा चुनाव में इस बात को लेकर भी जनता के बीच में जा रही है कि उसने देश के एक विधान, एक निशान, एक प्रधान के संकल्प को पूरा कर दिया है। मोदी सरकार का यह बड़ा फैसला भी दूसरी बार सत्ता प्राप्ति के बाद लिया गया था। अनुच्छेद 370 को हटाकर जम्मू-कश्मीर को मिला विशेष राज्य का दर्जा समाप्त हो गया। साथ ही तीन तलाक के विरूद्ध कानून और महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिलाने के लिए नारी शक्ति वंदन अधिनियम को सितंबर, 2023 में पारित किया है।

शुरूआत के बाद बीते दो चुनावों में उसके मत में 15 करोड़ से अधिक की बढ़ोतरी हुई है। 2019 के चुनाव में तो उसे 224 सीटों पर 50 फीसदी से अधिक वोट मिले।

एनडीए बनाम इंडिया के बीच है मुकाबला

इस बार एनडीए के सामने यूपीए नहीं बल्कि 'इंडिया' गठबंधन के बीच है। हालांकि इस नए गठबंधन से जदयू,

कांग्रेस के मुद्दे

चुनावी बॉण्ड मामला

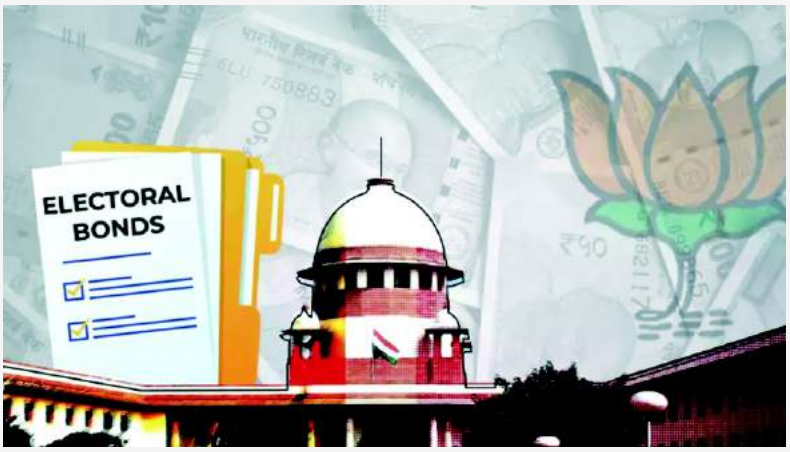

निर्वाचन आयोग ने चुनावी बॉण्ड का आंकड़ा सार्वजनिक कर दिया है। कांग्रेस ने चुनावी बॉण्ड योजना में कथित भ्रष्टाचार के लिए सत्तारूढ़ भाजपा के खिलाफ उच्चतम न्यायालय से उच्च स्तरीय जांच और उसके बैंक खातों को 'फ्रीज' करने की मांग की है। चुनाव से ठीक पहले यह मुद्दा सामने आया है और विपक्ष ने इसे हाथोंहाथ लिया है, लेकिन यह जमीनी स्तर पर काम करेगा या नहीं, यह अभी भी देखना बाकी है।

अमृत काल बनाम अन्याय काल

चुनावी मौसम के दौरान भाजपा का यह दावा होगा कि मोदी सरकार ने अमृतकाल में सुशासन, तेज गति से विकास और भविष्य के लिए एक दृष्टिकोण का आश्वासन दिया है। दूसरी ओर कांग्रेस ने मोदी सरकार के 10 वर्षों को बेरोजगारी, बढ़ती कीमतें, संस्थाओं पर कब्ज़ा, संविधान पर हमला और बढ़ती आर्थिक असमानताओं' वाला 'अन्याय काल' करार दिया है।

किसानों के मुद्दे और एमएसपी की कानूनी गारंटी

चुनाव से ठीक पहले दिल्ली के निकट किसानों का आंदोलन भी चर्चा में हावी रहने की संभावना है। विपक्ष का आरोप है कि सरकार ने किसानों के साथ विश्वासघात किया है। कांग्रेस ने किसानों को एमएसपी की कानूनी गारंटी देने का वादा किया है। भाजपा नेता किसान नेताओं की चिंताओं को दूर करने के लिए उनसे बातचीत कर रहे हैं और वे आरोप लगाते रहे हैं कि कई आंदोलनकारी राजनीति से प्रेरित थे। सरकार ने इस बात पर भी जोर दिया है कि कैसे उसकी 'पीएम-किसान योजना' ने खेती करने वालों के जीवन को बदल दिया है। अधिकतर चुनावों की तरह किसानों के मुद्दे इस बार भी महत्वपूर्ण होंगे।

टीएमसी, आप, सपा समेत बड़ी पार्टियां अलग हो गई हैं। वहीं एनडीए तीसरी बार दिल्ली की सत्ता पर काबिज होने का सपना देख रही है। यूपीए को खत्म कर ही नए महागठबंधन इंडिया को बनाया गया था। इंडिया गठबंधन में इस बार कांग्रेस, डीएमके, एमडीएमके, केडीएमके, वीसीके, जेडीयू, राष्ट्रीय जनता दल, सीपीआई, सीपीआई (एम), सीपीआई (एमएल),

जीतू पटवारी से नहीं संभल रही कांग्रेस, कमलनाथ के समय मजबूत था संगठन

मध्यप्रदेश में कांग्रेस की हालात काफी पतली होती जा रही है। प्रत्येक दिन कोई न कोई नेता पार्टी को अलविदा कह रहा है। जबकि सिर पर लोकसभा के चुनाव हैं। इससे पहले ही पार्टी को चुनाव में योग्य उम्मीदवार की चाह दो चार होना पड़ा है। यह स्थिति तब से और विकट हुई है जबसे जीतू पटवारी कांग्रेस के अध्यक्ष बने हैं। इससे पहले पूर्व मुख्यमंत्री कमलनाथ के हाथ में पार्टी की बांगडोर थी तब स्थिति ऐसी नही थी। उनकी संगठन पर काफी पकड़ थी। उनमें सबको साधने और साथ लेके चलने की कला थी। किसी नेता को कोई शिकायत या शिकवा होता तो वह अपने ही स्तर पर संभाल लेते थे। यही कारण है कि उनके कार्यकाल में पार्टी सत्ता तक पहुंची थी। 2023 में भी वह पूरे दमखम के साथ चुनाव मैदान में थे। हालांकि चुनाव भले ही न जीत पाये हो लेकिन बीजेपी को परेशान जरूर कर दिया था। अब जब पटवारी के हाथ में कमान है तो उनसे पार्टी संभल ही नहीं रही है। बताया जा रहा है कि जीतू पटवारी का अहंकार और अमर्यादित शैली पार्टी को डुबोने के लिए जिम्मेदार है। वर्तमान समय में कांग्रेस मजबूत होने की बजाय कमजोर होती जा रही है। कई कददावर नेताओं के पार्टी छोड़ने से बीजेपी और मजबूत होती जा रही है। पटवारी में सबको साथ लेकर चलने की क्षमता नहीं है। अपनों से ज्यादा विरोधी हैं। पटवारी युवा हैं, अनुभवी हैं लेकिन वरिष्ठों को सम्मान देना, उनके अनुभव का लाभ लेना, सलाह मशवरा कर निर्णय लेना जैसे गुण पटवारी में नहीं है। यही कारण है कि जिन्होंने ने भी पार्टी छोड़ी है उन्होंने मान-सम्मान न मिलने और उपेक्षित होने का आरोप लगाया है।

वर्षों पुरानी कांग्रेस में जिस तरह से वरिष्ठ नेताओं की अनदेखी की जा रही है, उससे नाराज होकर अब वे भाजपा का हाथ थाम रहे हैं। छिंदवाड़ा में कमलनाथ के सात 'रत्नों' में से एक अमरवाड़ा से कांग्रेस विधायक कमलेश शाह के भाजपा में आने के बाद उनके मजबूत गढ़ छिंदवाड़ा की दीवारें भी दरखती दिख रही हैं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि पिछले दिनों कमलनाथ और नकुलनाथ के भाजपा में आने की अटकलें लगाई जा रही थीं। हालांकि, उन्होंने इसका खंडन किया लेकिन इससे विचलित होकर छिंदवाड़ा के हजारों कांग्रेस कार्यकर्ता भाजपा में शामिल हो गए। यह क्रम अभी थमा भी नहीं है। हाल ही में कमलनाथ के लिए सीट छोड़ने वाले दीपक सक्सेना भी कांग्रेस को छोड़ चुके हैं और बीजेपी में आ गए हैं। इससे पहले उनके बेटे ने कांग्रेस को अलविदा कहा था। बता दें, पूर्व केंद्रीय राज्यमंत्री सुरेश पचौरी सहित कई नेता भाजपा का दाम थाम चुके हैं। वहीं दमोह से लोकसभा प्रत्याशी नहीं बनाने से नाराज रंजीता गौरव पटेल ने भी कांग्रेस छोड़ भाजपा का दामन थाम लिया है। मध्य प्रदेश विधानसभा

आरएसपी, फारवर्ड ब्लॉक, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, शिवसेना (उद्धव बालासाहेब ठाकरे), झारखंड मुक्ति मोर्चा, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग और केरल कांग्रेस (जोसफ) जैसी 16 पार्टियां हैं। वहीं दूसरी ओर तृणमूल कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय लोकदल, केरल कांग्रेस (मणि), नेशनल कान्फ्रेंस और पीपल्स डेमोक्रेटिक जैसी सात पार्टियां हैं।

चुनाव में करारी हार के बाद हताश कांग्रेस को भाजपा संभलने का मौका भी नहीं दे रही है। पूर्व विधायक, महापौर, जिला व जनपद पंचायत के अध्यक्ष से लेकर बड़ी संख्या में पार्टी पदाधिकारियों को भाजपा की सदस्यता दिलाई जा चुकी है। विधानसभा चुनाव के दौरान जो लोग बड़ी आशा के साथ अन्य दलों से कांग्रेस में आए थे, वे भी पार्टी की स्थिति देखकर घर वापसी कर रहे हैं। प्रदेश कांग्रेस में नेतृत्व परिवर्तन के बाद पार्टी कमजोर होती जा रही है। कमल नाथ को हटाकर जीतू पटवारी को प्रदेश कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया है, लेकिन पार्टी में गुटबाजी इस कदर हावी है कि कोई भी वरिष्ठ नेता, प्रदेश के युवा नेतृत्व को स्वीकार नहीं कर रहा है। नेता अपने-अपने गुटों में बंटकर रह गए हैं।

दरअसल, देश में लोकसभा चुनाव 2024 की तारीखों का ऐलान हो गया है। राजनीतिक दल जोर शोर के साथ तैयारी में जुट गए हैं। लेकिन इन दिनों मध्य प्रदेश में सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी यानी कांग्रेस एक बड़ी चुनौती से जूझ रही है। जैसे-जैसे मतदान के दिन करीब आते जा रहे है, वैसे एक के बाद एक नेता कांग्रेस छोड़कर भाजपा में शामिल हो रहे हैं। प्रदेश में कांग्रेस छोड़ने वाली संख्या हजारों में पहुंच चुकी है। इससे पार्टी में जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं में हाहाकार मचा हुआ है। कांग्रेस में मची भगदड़ से हाईकमान की चिंता बढ़ गई है। अब नेताओं के पार्टी छोड़ने से कमजोर होती कांग्रेस को लेकर आलाकमान सख्त नजर आ रहा है। दरअसल, कांग्रेस के लिए चिंता की बात इसलिए भी ज्यादा है, क्योंकि कांग्रेस से बीजेपी की तरफ जाने वालों की इस दौड़ में पार्टी के बड़े नेता तो टूट ही रहे हैं, उनके साथ पार्टी संगठन की रीढ़ कहे जाने वाले ब्लॉक स्तर से लेकर जिला और विधानसभा स्तर तक के कार्यकर्ता भी पार्टी छोड़ रहे हैं। पिछले दिनों पूर्व केंद्रीय मंत्री सुरेश पचौरी अपने दर्जन भर समर्थकों के साथ बीजेपी में शामिल हुए तो वहीं 19 मार्च को ही कमलनाथ के बेहद करीबी माने जाने वाले कांग्रेस के पूर्व प्रवक्ता सैयद जफर ने भी बीजेपी की सदयता ले ली। उसके बाद कई पूर्व विधायक, वर्तमान विधायक, महापौर जैसे पद पर आसीन नेताओं ने भी काँग्रेस छोड़ दी।

19,600 नेताओं ने थामा भाजपा का दामन

- कांग्रेस, सपा, बसपा सहित अन्य दलों से आने वाले कुल नेता – 19,600
- केवल कांग्रेस से भाजपा में आने वाले– 18,200
- पूर्व विधायक– 13
- वर्तमान विधायक - 01
- पूर्व सांसद– 03
- पूर्व महापौर–01
- वर्तमान महापौर – 01
- जनप्रतिनिधि– 700

एनडीए की बात करें तो इसमें भाजपा, जेडीएस, जेडीयू, एलजेपी, शिवसेना (एकनाथ शिंदे), एनसीपी (अजित पवार), एनपीपी, आरएलजेपी, हम, एजीपी, निषाद पार्टी, एमएनएफ, अकाली दल समेत कई पार्टियां शामिल हैं।

आर-पार की लड़ाई में उतरे किसान

किसान आंदोलन 2.0

सड़कों पर अन्नदाता, कठघरे में मोदी सरकार

कुछ दिन बाद ही देश में लोकसभा के चुनाव हैं। और देश का अन्नदाता एक बार फिर अपने हकों की मांग करने के लिए सड़कों पर उतर चुका है। दिल्ली बार्डर पर अपनी आवाज को बुलंद करने में जुटा हुआ है। हालांकि अभी आंदोलन ठंडे माहौल में है लेकिन शांत नहीं हुआ है। आंदोलन की चिंगारी अभी और फैलेगी। हजारों की संख्या में किसान पूरे दमखम के साथ दिल्ली में दस्तक देने को तैयार हैं। इसी बीच केन्द्र की मौजूदा सरकार से किसान नेताओं की बातचीत भी जारी है लेकिन अभी तक कोई सकारात्मक नतीजा सामने नहीं आया है। कुछ दिन बाद ही लोकसभा के चुनाव हैं। ऐसी स्थिति में किसानों की नाराजगी मोदी के लिए भारी न पड़ जाये। किसान संगठनों और सरकार के बीच कई दौर की वार्ताएं फैल हो चुकी हैं। इसका एक प्रमुख कारण है कि मोदी सरकार किसान संगठनों की प्रमुख मांगों पर विचार करने तक को तैयार नहीं है। इस बार के किसान आंदोलन में किसानों की सबसे बड़ी मांगे हैं- एमएसपी पर कानून बने और स्वामीनाथन की सिफारिशों को लागू किया जाये। इन दोनों मांगों पर सरकार ने हाथ खड़े कर दिये हैं। मोदी सरकार को तीन कृषि कानूनों को निरस्त करने के लिए मजबूर करने के बाद, किसान लोकसभा चुनावों से ठीक पहले आंदोलन 2.0 के साथ वापस आए हैं। दिल्ली की दहलीज़ पर अपना लंबा विरोध प्रदर्शन ख़त्म करने के दो साल बाद किसान एक बार फिर राजधानी की ओर बढ़ गए हैं।

किसान आंदोलन 2.0 की अगुवाई संयुक्त किसान मोर्चा और किसान मज़दूर मोर्चा कर रहे हैं, किसान नेताओं का दावा है कि इन दो संगठनों के बैनर तले क़रीब 200 ज्यादा किसान संघ शामिल हैं। साल 2020 में शुरू हुए किसान की अगुवाई संयुक्त किसान मोर्चा कर रहा था। इसके बाद यह मोर्चा दो फाड़ में बंट गया। दो साल पहले दिल्ली के बॉर्डर पर धरने पर बैठे किसानों का आंदोलन इतना मुखर था कि नरेंद्र मोदी सरकार को कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सरलीकरण) क़ानून -2020, कृषक (सशक्तीकरण व संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार कानून 2020 और आवश्यक वस्तुएं संशोधन अधिनियम 2020 को रद्द करना पड़ा था। किसानों को डर था कि सरकार इन क़ानूनों के ज़रिए कुछ चुनिंदा फ़सलों पर मिलने वाले न्यूनतम समर्थन मूल्य देने का नियम ख़त्म कर सकती है और खेती-किसानी के कार्पोरेटाइज़ेशन (निगमीकरण) को बढ़ावा दे सकती है। इसके बाद उन्हें बड़ी एग्री-कमोडिटी कंपनियों का मोहताज होना पड़ेगा। इन कृषि क़ानूनों के रद्द होने के बाद किसानों ने भी अपना आंदोलन वापस ले लिया था। उस दौरान सरकार ने उन्हें न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारंटी देने का वादा किया था। इसके साथ ही उनकी कुछ और मांगों को भी पूरा करने का वादा किया गया था। अपनी मांगों को लेकर किसान हरियाणा-पंजाब के बॉर्डरों पर डटे हुए हैं। इसी दौरान खिनौरी बॉर्डर पर किसानों को रोकने के लिए प्रशासन द्वारा सख्ती दिखाते हुए किसानों पर कथित तौर पर फायरिंग की गई थी। जिस बीच एक युवा किसान शुभकरण की मौत हो गई थी। वहीं अब इस मामले में पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट ने सरकार को जमकर फटकार लगाई। हाईकोर्ट ने सख्त टिप्पणी करते हुए कहा कि, आप सरकार हैं आतंकवादी नहीं, जो इस प्रकार किसानों पर गोलियां चलवा रहे हैं। बता दें कि हाईकोर्ट में दाखिल शुभकरण की मौत की जुडिशल इन्वेस्टिगेशन की मांग पर हाईकोर्ट ने हरियाणा, पंजाब और अन्य प्रतिवादियों को नोटिस जारी कर जवाब मांगा है। एक्टिंग चीफ जस्टिस गुरमीत सिंह संधावालिया और जस्टिस लपिता बनर्जी ने किसानों के दिल्ली कूच को लेकर अलग-अलग याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए ये टिप्पणी की थी।

विजया पाठक

पिछली बार 2020 में किसानों को दिल्ली में प्रवेश की अनुमति दी गई थी लेकिन इस बार उन्हें राष्ट्रीय राजधानी में घुसने से रोक दिया है। यहां तक कि सड़कों पर कंटीले तार, सीमेंट के बैरिकेड और कीलें लगाई गई हैं। दिल्ली में प्रवेश करने के सभी रास्ते बंद कर दिए गए हैं। दिल्ली में धारा 144 लागू की गई है। वहीं हरियाणा

MSP बने कानून और स्वामीनाथन की सिफारिशें लागू करवाने पर अड़े किसान

सरकार ने पंजाब के साथ अपनी सीमाएं बंद कर दी हैं। किसान संगठनों का कहना है कि सरकार ने उनसे जो वादे किए वो पूरे नहीं किए गए, इसलिए वो फिर से दिल्ली कूच कर रहे हैं। किसानों की एक बड़ी मांग ये है कि सरकार डॉ. स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश के अनुसार एमएसपी के लिए कानून बनाए। इसके अलावा वो कर्ज़ माफी और पहले हुए आंदोलन के दौरान जान गंवाने वाले किसानों के परिवारों को मुआवज़े और परिवार के एक सदस्य के रोज़गार की भी मांग कर रहे हैं। देश की राजधानी दिल्ली में अन्नदाता एक बार फिर दस्तक दे रहे हैं। 02 साल पहले किसानों ने एक बड़ा आन्दोलन किया था, और आन्दोलन खत्म करते समय उन्होंने अपनी जीत का भी ऐलान किया था। लेकिन अब ऐसा क्या हुआ कि फिर एक बार किसान दिल्ली की दहलीज़ पर दस्तक देने वाले हैं। तो आइए समझते हैं। तारीख 5 जून, साल 2020। भारत सरकार ने तीन फार्म बिल पेश किए। इसी समय बड़े आंदोलन की चिंगारी पैदा हो चुकी थी। किसानों ने तीनों बिलों की मुखालिफत की। कहा इससे हमारा भला नहीं होगा। 14 सितंबर को पार्लियामेंट में अध्यादेश लाया गया। 17 सितंबर को ये लोकसभा में पास हुआ। 3 दिन बाद 20 सितंबर को राज्यसभा में भी इसे पास कर दिया गया। 24 सितंबर को पंजाब में किसानों ने इसके ख़िलाफ़ तीन दिनों के लिए रेल रोको अभियान की शुरु आत की। लेकिन इसका सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा। 25 सितंबर को ऑल इंडिया किसान संघर्ष कोर्डिनेशन कमिटी (AIKSC) ने देशव्यापी आन्दोलन की शुरुआत की। 27 सितंबर को इन बिलों को राष्ट्रपति की मंज़ूरी मिल गई और ये बिल, कानून बन गए। सरकार का कहना था कि इन कानूनों से किसानों का भला होगा। किसानों को डर था कि सरकार इन कानूनों के ज़रिये

देश के किसान साल भर मौसम के हिसाब से फसल उगाते हैं। ख़रीफ़ सीज़न में धान (चावल) और रबी में गेहूं। इस उपज को किसान बाज़ार में बेचते हैं। लेकिन अगर किसी मौसम में बंपर पैदावार हो जाए या जब किसी ख़ास प्रोडक्ट की अंतरराष्ट्रीय क़ीमत ही काफ़ी कम हो, तो बाज़ार क़ीमतें किसानों को पर्याप्त मज़दूरी देने के लिए कम पड़ जाती हैं। मुनाफा छोड़िये, भारत के किसानों के लिए गुज़ारा करना भी मुश्किल हो जाता है। और व्यक्तिगत परेशानियों की वजह से किसान खेती छोड़ दे, तो ये देश का नुक़सान है। व्यापक तौर पर देश की खाद्य सुरक्षा को ख़तरे में डाल सकता है। ऐसी स्थिति से बचने का एक तरीक़ा है, MSP। मिनिमम सपोर्ट प्राइस या न्यूनतम समर्थन मूल्य। अगर बाज़ार में दाम गिर भी जाए, तो सरकार किसानों से एक न्यूनतम दाम पर फसल की ख़रीद ले। यही उस फसल के लिए MSP है। हर सीज़न के दौरान सरकार 23 फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य का एलान करती है।

स्वामीनाथन आयोग के तहत कैसे निकाली जाती है MSP ?

MSP = C2+C2 का 50%। इसमें C2 माने पूंजी की अनुमानित लागत और भूमि पर किराया। फ ॉर्मूले का मकसद है कि किसानों को 50 प्रतिशत रिटर्न मिल जाए।

कौन-कौन सी फसलों पर मिलता है MSP ?

- **07 तरह के अनाज:** धान, गेहूं, मक्का, बाजरा, ज्वार, रागी और जौ।
- **05 तरह की दालें:** चना, अरहर, उड़द, मूंग और मसूर।
- **07 तिलहन:** रेपसीड-सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, कुसुम, निगरसीड।
- **04 व्यावसायिक फसलें:** कपास, गन्ना, खोपरा, कच्चा जूट।

कुछ चुनिंदा फसलों पर मिलने वाले न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) देने का नियम खत्म कर सकती है, और खेती-किसानी के कार्पोरेटीकरण को बढ़ावा दे सकती है। इसके बाद उन्हें बड़ी एग्री-कमोडिटी कंपनियों का मोहताज होना पड़ेगा। इसलिए किसान इन तीनों कानूनों को वापस लेने की मांग कर रहे थे। 13 महीने तक उन्होंने आंदोलन किया। इस दौरान कई किसानों की मौत हुई। किसानों ने पुलिस का दमन सहा। आंसू गैस के गोले, लाठी सबका प्रहार झेला। संयुक्त किसान मोर्चा ने 07 सौ से

ज़्यादा किसानों की लिस्ट जारी की, जो प्रोटेस्ट के दौरान मारे गए। नवंबर 2021 में भारत सरकार ने तीनों कानूनों को वापस ले लिया। इस दौरान सरकार ने किसानों को ग्च्ब् की गारंटी देने का वादा किया।

देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी इस समय कृषि से जुड़ी हुई है। अगर इतनी बड़ी आबादी की आय नहीं बढ़ेगी और वह सशक्त नहीं होगी। तो क्या देश का विकास संभव है। किसान अन्नदाता हैं। भारत के भाग्य विधाता हैं। उनके अधिकार की हरहाल में रक्षा होनी चाहिए। किसान आंदोलन का स्वरूप जिस तेजी से बदल रहा है उससे इसके राजनीतिक इस्तेमाल की आशंका बढ़ गयी है। सरकार की जिद से भी स्थिति खराब हुई है। क्या किसान आंदोलन की आग पर राजनीतिक दल अपनी रोटियां सेंकना चाहते हैं? मोटे तौर पर उनकी सबसे बड़ी चिंता न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को लेकर है। किसानों का कहना है वे मंडी में अनाज बेचे या बाहर, लेकिन हर हाल में उन्हें एमएसपी की गारंटी मिलनी चाहिए। अगर किसानों को अपनी उपज औने पौने दाम पर बेचनी पड़ी तो यह उनके साथ हकमारी होगी। यह बात सरकार को समझनी चाहिए, किसान देश की धड़कन हैं। देश की 70 प्रतिशत आबादी

देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी इस समय कृषि से जुड़ी हुई है। अगर इतनी बड़ी आबादी की आय नहीं बढ़ेगी और वह सशक्त नहीं होगी। तो क्या देश का विकास संभव है। किसान अन्नदाता हैं। भारत के भाग्य विधाता हैं। उनके अधिकार की हरहाल में रक्षा होनी चाहिए। किसान आंदोलन का स्वरूप जिस तेजी से बदल रहा है उससे इसके राजनीतिक इस्तेमाल की आशंका बढ़ गयी है।

क्या है स्वामीनाथन रिपोर्ट?

18 नवंबर 2004 को कृषि विज्ञानी और प्रोफ़ेसर एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई गई थी, जिसे देश में किसानों की हालत सुधारने के रास्ते खोजने थे। क़रीब दो साल बाद - अक्टूबर 2006 में कमेटी ने अपनी सिफ़ारिशें दे दीं, जिसे अभी तक किसान प्रदर्शनों में लागू करने की बात की जाती है। स्वामीनाथन कमेटी की सबसे बड़ी सिफ़ारिश ये थी कि सरकार किसानों की फसलों को लागत मूल्य से सीधे-सीधे डेढ़ गुना क़ीमत पर ख़रीदे और आगे अपने हिसाब से बेचे। इसमें किसानों को 50 प्रतिशत रिटर्न देने के लिए पूंजी की इनपुट लागत और भूमि पर किराया (जिसे 'सी 2' कहा जाता है) शामिल है। इसके अलावा कमेटी ने मुख्यत: किसानों के लिए लैंड रिफार्मस, सिंचाई, प्रोडक्शन, क्रेडिट और बीमा, फूड सिक्योरिटी से संबंधित सिफ़ारिशें की थीं।

कहीं लोकसभा चुनाव में भारी न पड़ जाये किसानों की नाराजगी

कृषि पर निर्भर है। आज यह आबादी अपने हक की लड़ाई लड़ रहा है। 70 सालों से किसान लुटता-पिटता आ रहा है। आज उसका सब्र टूटा है। इन 7 दशक में देश में बहुत कुछ बदला, देश का विकास हुआ, उद्योगों का विकास हुआ, कुछ नही बदला तो वह है किसानों का जीवन स्तर। वह आज भी सरकार की उपेक्षाओं और तिरस्कार का शिकार होता जा रहा है। आज सरकार को चाहिए वह किसानों की दुर्दशा और स्थिति को भांपते हुए कोई ऐसा रास्ता निकाले, जो वाकई में किसानों के हक में हो। किसानों के इस आंदोलन में किसी भी प्रकार का राजनीतिकरण लगाने के आरोप सरासर गलत है। किसान किसी भी पार्टी का नहीं वह देश का अन्नदाता है। उसकी तकलीफ सभी की तकलीफ है। सरकार को अपनी जिद और हठधर्मिता से पीछे हटकर बीच का रास्ता निकालने की ठोस पहल करनी चाहिए। मोदी सरकार आज ऐसी स्थिति में है जो जब चाहे किसानों के हित के फैसले ले सकती है। सरकार को यह भी नही भूलना चाहिए कि आज यह आंदोलन सिर्फ बार्डर तक सीमित है, भविष्य में कुछ नतीजा नही निकला तो आंदोलन बहुत भयानक भी हो सकता है। तब सरकार इसे संभाल नही पायेगी।

किसान संगठनों और सरकार के बीच कई दौर की वार्ताएं हो चुकी है लकिन सब वार्ताएं बेनतीजा रही है। यही कारण है कि किसानों और सरकार के बीच कड़वाहट बरकरार है।

क्या है एमएसपी का लेखा जोखा?- हम जानते हैं कि देश में 23 फसलों की एमएसपी घोषित होती है। इसमें मुख्य रूप से खाद्यान्न- गेंहू, धान, मोटे अनाज, दालें, तिलहन, गन्ना व कपास जैसे कुछ नकदी फसलें शामिल हैं। दूध, फल, सब्जियों, मांस, अंडे आदि की एमएसपी घोषित नहीं होती। 2019-20 में एमएसपी पर खरीदी जाने वाली फसलों में से गेंहू और चालव (धान के रूप में) दोनों को जोड़कर लगभग 2.15 लाख करोड़ रुपये मूल्य की सरकारी खरीद एमएसपी पर की गई। चावल के कुल 11.84 करोड़ टन उत्पादन में से 5.14 करोड़ टन यानी 43 प्रतिशत एमएसपी पर सरकारी खरीद हुई। इसी प्रकार गेंहू के 10.76 करोड़ टन उत्पादन में से 3.90 करोड़ टन यानी 36 प्रतिशत सरकारी खरीद हुई। दलहन और तिलहन की फसलों की भी एमएसपी पर कुछ मात्रा में सरकारी खरीद

MSP की आवश्यकता क्यों?

वर्ष 2014 और वर्ष 2015 में लगातार दो सूखे की घटनाओं के कारण किसानों को वर्ष 2014 के बाद से वस्तु की कीमतों में लगातार गिरावट का सामना करना पड़ा। विमुद्रीकरण एवं वस्तु एवं सेवा कर ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था, मुख्य रूप से गैर-कृषि क्षेत्र के साथ-साथ कृषि क्षेत्र को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। वर्ष 2016-17 के बाद अर्थव्यवस्था में जारी मंदी और उसके बाद कोविड महामारी के कारण अधिकांश किसानों के लिये परिदृश्य विकट बना हुआ है। डीज़ल, बिजली एवं उर्वरकों के लिये उच्च इनपुट कीमतों ने उनके संकट को और बढ़ाया है। यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य मिले, जिससे कृषि संकट एवं निर्धनता को कम करने में मदद मिलती है। यह उन राज्यों में विशेष रूप से प्रमुख है जहाँ कृषि आजीविका का एक प्रमुख स्रोत है।

किसान आंदोलन 2.0

किसानों की क्या मांग हैं?

- सरकार डॉ. स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुरूप सभी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी MSP के लिए कानून बनाए। ये मांग किसानों ने तब भी की थी, जब उन्होंने अपना पिछला आंदोलन खत्म किया था।
- किसानों-मज़दूरों के लिए पूर्ण कर्ज़माफी समेत एक व्यापक ऋण राहत कार्यक्रम लागू किया जाए।
- राष्ट्रीय स्तर पर भूमि अधिग्रहण कानून (2013) को बहाल किया जाए, जिसमें किसानों से लिखित सहमति की ज़रूरत होती है और कलेक्टर रेट से चार गुना मुआवज़ा दिया जाए।
- किसानों और 58 साल से अधिक आयु के खेतिहर मज़दूरों के लिए प्रतिमाह पेंशन देने की योजना लागू की जाए।
- दिल्ली आंदोलन के दौरान जान गंवाने वाले किसानों के परिवारों को मुआवजा दिया जाए और उनके परिवार के एक सदस्य को रोज़गार भी।
- लखीमपुर खीरी हिंसा के पीड़ितों को न्याय मिले। अक्टूबर, 2021 में घटी इस घटना में आठ लोगों की जान चली गई थी।
- कृषि वस्तुओं, दूध उत्पादों, फल-सब्ज़ियों और मांस पर आयात शुल्क कम करने के लिए भत्ता बढ़ाया जाए।
- महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) को बढ़ाया जाए। दिहाड़ी 700 रुपये की जाए और सालाना 200 दिन का रोज़गार मिले। इसे कृषि गतिविधियों के साथ एकीकृत किया जाए।
- बीज गुणवत्ता मानकों में सुधार के लिए नकली बीज, कीटनाशकों और उर्वरक बनाने-बेचने वाली कंपनियों पर सख्त कार्रवाई की जाए।
- बिजली की बराबर पहुंच सुनिश्चित हो, इसके लिए विद्युत संशोधन विधेयक (2020) को रद्द किया जाए।
- मिर्च, हल्दी और बाकी सुगंधित फसलों की खेती को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाए।

2020 में क्या थी मांगें?

- किसानों को उनकी उपज के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) दिए जाने की नीति को जारी रखा जाए। इसके लिए एक समिति का गठन किया जाए जिसमें संयुक्त किसान मोर्चे के प्रतिनिधि को भी शामिल किया जाए।
- आंदोलन के दौरान जिन किसानों की मौत हुई है उनके परिवार को सरकार मुआवज़ा दे।
- विरोध प्रदर्शन के दौरान राज्य या केंद्र की एजेंसियों के किसानों के खिलाफ दर्ज सभी मामले वापस लिए जाएं।
- पराली जलाने के मामले में किसानों को अपराधी नहीं ठहराया जाना चाहिए।

होती है। देश में लगभग 30 करोड़ टन खाद्यान्न का वार्षिक उत्पादन हो रहा है। जिसमें 75 प्रतिशत केवल गेंहू और चावल ही हैं। एमएसपी पर सरकारी खरीद भी मुख्यतः इन दो फसलों की ही होती है। किसान अपने परिवार के लिए खाद्यान्न रखने

किसान आंदोलन 2.0

अबकी बार आश्वासन पर नहीं, आदेश पर मानेंगे किसान संगठन

किसानों की मांगों पर सरकारी रूख

सरकार की ओर से किसानों से बातचीत के लिए कृषि और किसान कल्याण मंत्री अर्जुन मुंडा, वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल और गृह राज्य मंत्री नित्यानंद राय की कमेटी बनाई गई हैं। किसानों और इस कमेटी में कई बार बातचीत हो चुकी है। 18 फरवरी 2024 को, केंद्र सरकार और पंजाब के किसान संघों के बीच बातचीत हुई बातचीत में सरकार ने समाधान के लिए गेहूं और धान से हटकर विविधता लाने प्रस्ताव दिया। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों जैसे एनसीसीएफ और नाफेड के माध्यम से समझौता कर कपास, दालों और मक्का आदि 5 फसलों की एमएसपी खरीद के लिए पांच साल के करार का प्रस्ताव था। सवाल है कि क्या सरकार किसानों कि मांगों को पूरा नहीं कर सकती? क्या ये मांगें पूरी तरह से निराधार हैं? इन सवालों के जवाब जानना बेहद जरूरी है। इस मामले में राय बंटी हुई है जो दोनों ओर के अपने-अपने तर्क हैं।

किसानों की मांगों के पक्ष में तर्क

जो लोग किसानों की मांगों का समर्थन कर रहें हैं उनका कहना है कि किसान लंबे समय से एमएसपी को कानूनी तौर पर लागू करने की मांग करते आए हैं। ऐसा के बाद बाकी लगभग 20 करोड़ टन बाजार में बेच देता है। इसमें से लगभग 10 करोड़ टन सरकार खरीद लेती है, बाकी 10 करोड़ टन ही निजी व्यापारी खरीदते हैं। अब यदि यह मान लिया जाए कि निजी व्यापारी औसतन 5000 रुपये प्रति टन एमएसपी से नीचे मूल्यव पर फसल खरीदते हैं तो एमएसपी बाध्यनकारी होने पर उन्हें 50 हजार करोड़ रूपये अतिरिक्त चुकाने होंगे। इसी प्रकार एमएसपी वाली गैर-खाद्यान्न फसलों को भी जोड़ दें तो भी यह राशि किसी भी सूरत में एक लाख करोड़ रूपये से

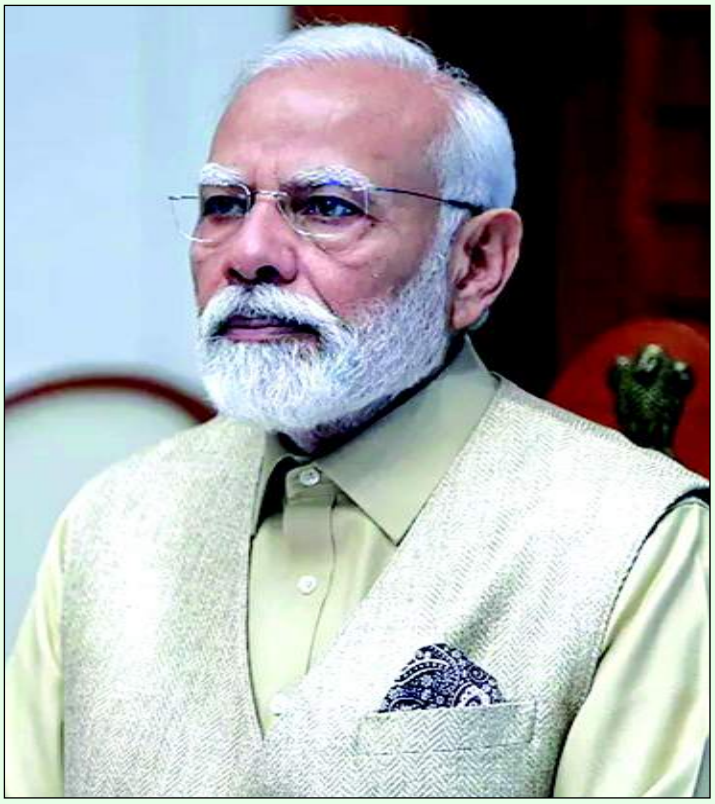

कहा जा रहा है कि 2020-21 के किसान आंदोलन में भी इस तरह की मांग उठी थी और उस समय सरकार ने इस पर विचार करने का आश्वासन दिया था। देश की 62 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से जुड़ी हुई है और देश की 50 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। किसानों की आय आज भी न्यूनतम स्तर पर है। एमएसपी की गारंटी के चलते उन्हें बाजार के उतार चढ़ाव से राहत मिलेगी और उन्हें फसलों का एक न्यूनतम मूल्य मिलेगा। जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति भी ठीक होगी और उनकी आय दोगुनी करने में मदद मिलेगी। फरवरी 2018 में केंद्र सरकार की ओर से बजट पेश करते हुए तत्कालीन वित्त मंत्री अरु ण जेटली ने कहा था कि अब किसानों को उनकी फसल का जो दाम मिलेगा वह उनकी लागत का कम से कम डेढ़ गुना ज्यादा होगा। सीएसीपी की रिपोर्ट देखेंगे तो पता चलता है कि अभी फसल की लागत पर जो एमएसपी तय किया जा रहा है वह ए2अएफएल है। वर्ष 2004 में प्रो. एमएस स्वामीनाथन की अगुवाई में राष्ट्रीय किसान आयोग के नाम से जो कमेटी बनी थी उसने अक्टूबर 2006 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी थी। आयोग की रिपोर्ट भी किसानों के लिए एमएसपी सुनिश्चित करने की सिफारिश करती है। आयोग की रिपोर्ट में कहा गया था कि किसानों के लिए फसल का औसत खर्च या लागत और उसमें 50 प्रतिशत की वृद्धि करके एमएसपी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। जिसे C2+50% फॉर्मूला भी कहा जाता है। लेकिन ये लागू नहीं हुआ। सरकार यह अनाज एमएसपी पर ही खरीदती है। यह खर्चे को सरकार बखूबी सहती है। अगर सरकार एमएसपी पर अनाज खरीद कर 80 करोड़ लोगों को फ्री में राशन दे सकती है तो किसानों को एमएसपी की कानूनी गारंटी क्यों नहीं दे सकती? यहां पर सरकार के उपर आर्थिक दबाव का तर्क भी खत्म हो जाता है। वैसे अगर देखा जाए तो एमएसपी की कानूनी गारंटी सरकार के वादे को पूरा करने में भी मदद करेगा। वृद्ध किसानों और खेतिहर मज़दूरों की पेंशन देने की मांग पर तर्क है कि पेंशन की राशि भले ही उतनी ज्यादा न हो, लेकिन कम से कम वृद्धावस्था में किसानों और मजदूरों के गुजारे के लिए एक न्यूनतम पेंशन व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। पंजाब के अधिकांश क्षेत्र में गेहूँ और धान (2020-21 में 85प्रतिशत) की खेती होती है। वहीं सरकार ने जिन फसलों जैसे कपास, दालों और मक्का आदि के लिए एक के लिए ऑफर दिया था, उनमें पारिस्थितिकी तंत्र (बाजार, खरीदार, रसद, इनपुट आपूर्ति, आदि) उतना महत्वपूर्ण नहीं है। बस सिर्फ सरकारी समर्थन की आवश्यकता है वो सरकार देने को तैयार है।

किसानों की मांगों के विरोध में सरकार का तर्क

इन तर्कों के मुताबिक एमएसपी कानून पूरी दुनिया में कहीं भी नहीं है। एमएसपी को कानूनन अनिवार्य बनाना बहुत मुश्किल है। इसका सीधा ज्यादा नहीं बैठती। यह राशि हमारी जीडीपी का केवल आधा प्रतिशत है। 30 लाख करोड़ रूपये की कृषि जीडीपी के सापेक्ष यह मात्र 3.33 प्रतिशत है।

भारत में किसान आंदोलनों का इतिहास

नील विद्रोह (1859-62) अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिये यूरोपीय बागान मालिकों ने किसानों को खाद्य फसलों के बजाय नील की खेती करने के लिये बाध्य किया। नील की खेती से किसान असंतुष्ट थे क्योंकि नील की खेती के लिये कम

मतलब होगा एमएसपी का अधिकार, ऐसे में जिसे एमएसपी नहीं मिलेगा वह कोर्ट जा सकता है और न देने वाले को सजा हो सकती है। केंद्र सरकार की कमाई ही सालाना 23.30 लाख करोड़ रुपए है जबकि अगर उसे सभी 23 फसलों की खरीद एमएसपी पर करनी पड़े तो सरकार को इसके लिए 17 लाख करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च करने पड़े सकते हैं। अगर सरकार एमएसपी को अनिवार्य कानून बना देगी तो वह तो सभी फसलों पर लागू होगी, बस धान या गेहूं पर ही तो नहीं होगी। दूसरी फसलों के किसान भी तो मांग करेंगे। ऐसे में लोगों की भलाई के लिए होने वाले कामों और विकास के कामों के लिए बहुत कम पैसा बचेगा। गरीबों को मिल रहीं दूसरी सुविधाओं पर भी इसका असर देखने को मिल सकता है। जब फसल की लागत हर प्रदेश में अलग-अलग, तो एमएसपी पूरे देश में एक क्यों? अब मान लीजिए कि कल देश में गेहूं या चावल का उत्पादन बहुत ज्यादा हो जाता है और बाजार में कीमतें गिर जाती हैं तो वह फसल कौन खरीदेगा। कंपनियां कानून के डर से कम कीमत में फसल खरीदेंगी ही नहीं। ऐसे में फसल किसानों के पास ऐसी ही रखी रह जायेगी या सरकार को जबरन खरीद करनी पडेगी। वर्ष 2015 में भारतीय खाद्य निगम (FCI) के पुनर्गठन का सुझाव देने के लिए बनी शांता कुमार समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया था कि एमएसपी का लाभ सिर्फ 6 प्रतिशत किसानों को ही मिल पाता है जिसका सीधा मतलब है कि देश के 94 फीसदी किसान एमएसपी के फायदे से दूर रहते हैं। देश में अभी जिन फसलों की खरीद एमएसपी पर हो रही है, उसके लिए हमेशा एक 'फेयर एवरेज क्वॉलिटी' तय होता है। मतलब फसल की एक निश्चित गुणवत्ता तय होती है, उसी पर किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है। अब कोई फसल गुणवत्ता के मानकों पर खरी नहीं उतरती तो किसान तो क्या होगा। अभी तो व्यापारी फसल की गुणवत्ता कम होने पर भी खरीद लेते हैं, लेकिन कानून बनने के बाद यह कैसे संभव हो पायेगा। जब फसल की कीमत फिक्स कर दी जायेगी? इसके लागू करना मुश्किल होगा। हम कृषि में पीछे की ओर जाना चाह रहे हैं। जहां सब कुछ सरकार ही करेगी। फसल पैदा भी करायेगी और उसकी खरीद भी करेगी। व्यापारियों के सामने बड़ी मुश्किल आयेगी। पैसा कहां से आयेगा? आयात भी बढ़ सकता है। अंतरराष्ट्रीय बाजारों में हमारी उपज की कीमत वैसे ही कई देशों की अपेक्षा ज्यादा है। ऐसे में अगर एमएसपी को अनिवार्य कानून बनाया गया तो व्यापारी आयात करने लगेंगे और सरकार उन्हें रोक भी नहीं पायेगी। सरकार किसानों से सारी फसलें एमएसपी पर खरीदेगी तो इसके बजट के लिए करों में करीब तीन गुना वृद्धि करनी होगी। जिससे देश के करदाताओं पर कर का बोझ बढ़ेगा। सरकार राशन व्यवस्था के लिए धान-गेहूं की जो सरकारी खरीद करती है, उसमें करीब दो लाख करोड़ रुपये सबसिडी का स्तर आता है। सब्सिडी के कारण देश को विश्व व्यापार संगठन के सामने झुकना पड़ता है। हमें उन्हें बताना पड़ता है कि हमारे यहां गरीबी है, हमें सब्सिडाइज फूड देना पड़ता। इसीलिए सरकार खाद्य सुरक्षा नीति भी लेकर आई। हमें अपने कृषि बाजार खोल देने चाहिए। अभी भी हम कई उपज पर सब्सिडी देकर उसका निर्यात कर रहे हैं। मतलब पहले हम पैदा करने के लिए सब्सिडी दे रहे हैं फिर उसका व्यापार करने के लिए सब्सिडी दे रहे हैं। ऐसे में भारत पर डब्ल्यूटीओ का भारी दबाव है। देश लगभग 35 लाख टन दालों का आयात करता है। तिलहन में भी हम आयात पर निर्भर हैं। ऐसे में सरकार अगर प्रोत्साहन देगी तो आयात पर निर्भरता कम होगी। ऐसे में केंद्र के कपास, दालों और मक्का आदि 5 फसलों की एमएसपी खरीद के लिए पांच साल के करार के प्रस्ताव को अस्वीकार करके, कृषि संघों ने अपने कुछ समय के हितों के लिए पंजाब के किसानों के दीर्घकालिक हितों को दाँव पर लगा दिया है। वह किसानों को गेहूँ और धान से उपर उठकर कुछ नया नहीं करने दे रहे हैं। इन यूनियनों की वजह से न केवल किसानों नए बाजार में संभावनाएँ तलाशने से अछूते हैं बल्कि इनकी इसी जिद्द के कारण भूजल तनाव भी बढ़ रहा है और किसानों को इनपुट लागत भी ज्यादा आ रही है। अंततः, यह कुछ वर्षों में कुछ बेल्टों को धान और गेहूँ की खेती के लिए अनुपयुक्तबना सकता है, जिससे छोटे और सीमांत किसानों को और नुकसान होगा। फिलहाल, पंजाब में मक्का 1.5 प्रतिशत है, कपास 3.2 प्रतिशत है, और दालें केवल 0.4 प्रतिशत हैं। सरकार के प्रस्ताव से किसानों को मौका मिलता कि वह इन फसलों की ओर बढ़ें और नए बाजार व खरीदारों से मिलें। खासकर निजी क्षेत्र में, जिससे उन्हें अपनी उपज बेचने के अधिक विकल्प मिलते। पंजाब में पानी की पारिस्थिति के दृष्टिकोण से भी यह प्रस्ताव पंजाब के लिए आदर्श था क्योंकि वहाँ भूजल स्तर चिंताजनक रूप से कम हो गया है।

कीमतों की पेशकश की गई। नील लाभदायक नहीं था। नील की खेती से भूमि की उर्वरा शक्तिकम हो जाती है। व्यापारियों और बिचौलियों के कारण किसानों को नुकसान उठाना पड़ा। परिणामस्वरूप उन्होंने बंगाल में नील की खेती न करने के लिये आंदोलन शुरू कर दिया। सरकार ने एक नील आयोग नियुक्त किया और नवंबर 1860 में एक आदेश जारी किया जिसमें कहा गया कि रैयतों को नील की खेती के लिये मजबूर करना अवैध था।

पाबना आंदोलन (1870-80) पूर्वी

2020 में सरकार ने क्या दिया था आश्वासन?

सरकार ने कहा था कि वो तीनों कृषि कानूनों को वापस लेगी। सरकार ने कहा था कि किसान आंदोलन और पराली जलाने से जुड़े मामले अगर दर्ज किए गए हैं तो उन्हें वापस लिया जाएगा। एमएसपी के एक नए ढांचे पर काम किया जाएगा जिसके लिए एक समिति बनाई जाएगी। इसमें राज्यों और केंद्र के अधिकारियों के अलावा कृषि विशेषज्ञों और किसानों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा। आंदोलन के दौरान मारे गए किसानों के परिजनों को पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्य सरकारें पांच लाख प्रति परिवार मुआवज़ा देंगी। परिवार के एक व्यक्ति को नौकरी देने की बात पर भी सहमति हुई। पिछली बार सरकार ने तीनों विवादित कृषि कानून तो वापस ले लिए थे। वहीं किसान आंदोलन के दौरान प्रदर्शनकारियों पर दर्ज किए गए सभी मामले वापस लेने की मांग मान ली थी। हालांकि एमएसपी को लेकर कोई कानूनी गारंटी नहीं दी गई थी।

कब-कब क्या-क्या हुआ?

- 05 जून 2020 को मोदी सरकार तीन कृषि बिल अध्यादेश के ज़रिए लेकर आई। इसी साल 14 सितंबर को केंद्र सरकार ने इन अध्यादेशों को संसद में पेश किया।
- 17 सितंबर 2020 को ये तीनों कृषि बिल लोकसभा से पारित हुए। तीन दिन बाद 20 सितंबर को विपक्ष के भारी विरोध के बाद राज्यसभा में भी ये पारित हो गए।
- 27 सितंबर तत्कालीन राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने इस पर मुहर लगाकर इसे कानून की शक्ल दे दी।

बंगाल के बड़े हिस्से में ज़मींदार, गरीब किसानों से अक्सर बढ़ाए गए लगान और भूमि करों को जबरदस्ती वसूलते थे। इसके विरोध में किसानों का संघर्ष पूरे पटना और पूर्वी बंगाल के अन्य ज़िलों में फैल गया। यह लड़ाई वर्ष 1885 तक जारी रही लेकिन जब सरकार ने बंगाल काश्तकारी अधिनियम द्वारा अधिभोग अधिकारों में वृद्धि कर दी तब यह खत्म हो गई।

दक्कन विद्रोह (1875) ये विद्रोह दक्कन के किसानों ने मुख्य रूप से मारवाड़ी और गुजराती साहूकारों की ज़्यादतियों के खिलाफ किया गया था। रैयतवाड़ी व्यवस्था के अंतर्गत रैयतों को भारी कराधान का सामना करना पड़ा।

सामाजिक बहिष्कार (1874) में रैयतों ने साहूकारों के खिलाफ एक सामाजिक बहिष्कार आंदोलन का आयोजन किया। सरकार आंदोलन को दबाने में सफल रही। सुलह के उपाय के रूप में

इनका कहना है-

सरकार ने आंदोलन खत्म करने की अपील करते हुए जो वादे किए थे, वो पूरे नहीं किए। चाहे न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारंटी का वचन हो या फिर पिछले आंदोलन के वक़्त किसानों पर किए मुकदमों को वापस लेने का वादा। किसान आंदोलन को करीब से कवर कर रहे कुछ जानकारों और पत्रकारों ने भी कहा है कि किसान संगठन सरकार पर पिछले वादों को पूरा करने का दबाव बना रहे हैं। इसलिए लोकसभा चुनाव के ठीक पहले आंदोलन करना किसान संगठनों का एक रणनीतिक कदम है।

- जगजीत सिंह डल्लेवाल, किसान नेता

सरकारों द्वारा किसानों को दी जाने वाली नाममात्र की रियायतें

हाल के सालों में किसानों को एक बड़ी राहत यूपीए शासन के दौरान 2008-09 में मिली। 72,000 करोड़ रूपए की कर्जमाफी थी। इस समय कृषि जोतों के हिसाब से 14 करोड़ 65 लाख किसानों में से करीब 11 करोड़ किसानों को सालाना छह हजार रुपए किसान सम्मान निधि मिल रही है। लेकिन खाद बीज और कीटनाशक दवाओं और ट्रैक्टर पर जीएसटी और पेट्रोल और डीजल के दामों के बढ़ने ने किसानों की लागत बढ़ा दी है। बीते छह सालों में अगर गौर करें तो दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश में किसानों के 40 हजार करोड़ के कर्ज माफ हुए और तेलंगाना में भी करीब 20 हजार करोड़ की कर्ज माफी हुई और कर्नाटक सरकार ने भी ऐसा किया। उत्तरप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के साथ महाराष्ट्र ने भी इस दिशा में कदम आगे बढ़ाया। लेकिन बात महज एक बार की कर्जमाफी से संभलने वाली नही है। आज खेती बाड़ी के कई संकट है। केवल कृषि पर आधारित परिवार गांव में संकट में हैं क्योंकि उन पर कई तरह के दबाव हैं। गांवों में प्रति व्यक्तिभूमि स्वामित्व में लगातार कमी आती जा रही है। छोटे-छोटे खेतों की उत्पादकता कम है और घाटे की खेती करना लाखों छोटे किसानों की नियति बन गयी है। किसान सम्मान निधि के बाद भी वे समय पर बीज खाद आदि हासिल करने की स्थिति में नहीं होते। खेती की लागत लगातार बढ़ रही है और पंजाब जैसे राज्य में उपज स्थिर हो गयी है। भारत सरकार ने जो कृषि मूल्य नीति 1985-86 बनायी थी, उसमें न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद को संवैधानिक जिम्मेदारी माना गया। लेकिन बात सीमित दायरे में गेहूं और धान से आगे नाममात्र की बढ़ सकी है। एमएसपी से किसानों को कुछ गारंटी मिली लेकिन जो फसलें इसके दायरे में नहीं वे सबसे अधिक अनिश्चितता की शिकार है। देश के उन 86 फीसदी किसानों के सामने सबसे अधिक संकट है जिनकी पहुंच मंडियों तक है ही नहीं, न ही एमएसपी तक। लेकिन इस तस्वीर के बावजूद कम औसत उत्पादकता के बाद भी चीन के बाद भारत सबसे बड़ा फल और सब्जी उत्पादक बन गया है। चीन और अमेरिका के बाद यह सबसे बड़ा खाद्यान्न उत्पादक देश हो गया है। लेकिन किसान संगठनों की लंबे समय से चली आ रही इस मांग की सभी दलों ने अनसुनी की कि 1969 को आधार वर्ष मानते हुए फसलों का दाम तय हो।

दक्कन कृषक राहत अधिनियम 1879 में पारित किया गया।

चंपारण सत्याग्रह (1917) बिहार के चंपारण ज़िले में नील के बागानों में यूरोपीय बागान मालिकों के किसानों के अत्यधिक उत्पीड़न के खिलाफ ये आंदोलन हुआ। महात्मा गांधी ने चंपारण पहुँचकर चंपारण छोड़ने के ज़िला अधिकारी के आदेश की अवहेलना की। चंपारण कृषि अधिनियम 1918 के अधिनियमन ने काश्तकारों को नील बागान मालिकों द्वारा लगाए गए विशेष नियमों से मुक्तकर दिया।

खेड़ा सत्याग्रह (1918) इस सत्याग्रह को मुख्य रूप से सरकार के खिलाफ शुरू किया गया था। वर्ष 1918 में गुजरात के खेड़ा ज़िले में फसलें नष्ट हो गईं, लेकिन सरकार ने भू-राजस्व माफ करने से इनकार कर दिया और इसके पूर्ण संग्रह पर ज़ोर दिया। गांधीजी ने सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ किसानों का समर्थन किया और किसानो ने अपनी मांगें पूरी होने तक राजस्व का भुगतान रोक दिया। यह सत्याग्रह जून 1918 तक चला।

मोपला विद्रोह (1921) मोपला मालाबार क्षेत्र में रहने वाले मुस्लिम किरायेदार थे जहाँ अधिकांश ज़मींदार हिंदू थे। उनकी प्रमुख शिकायतें कार्यकाल की

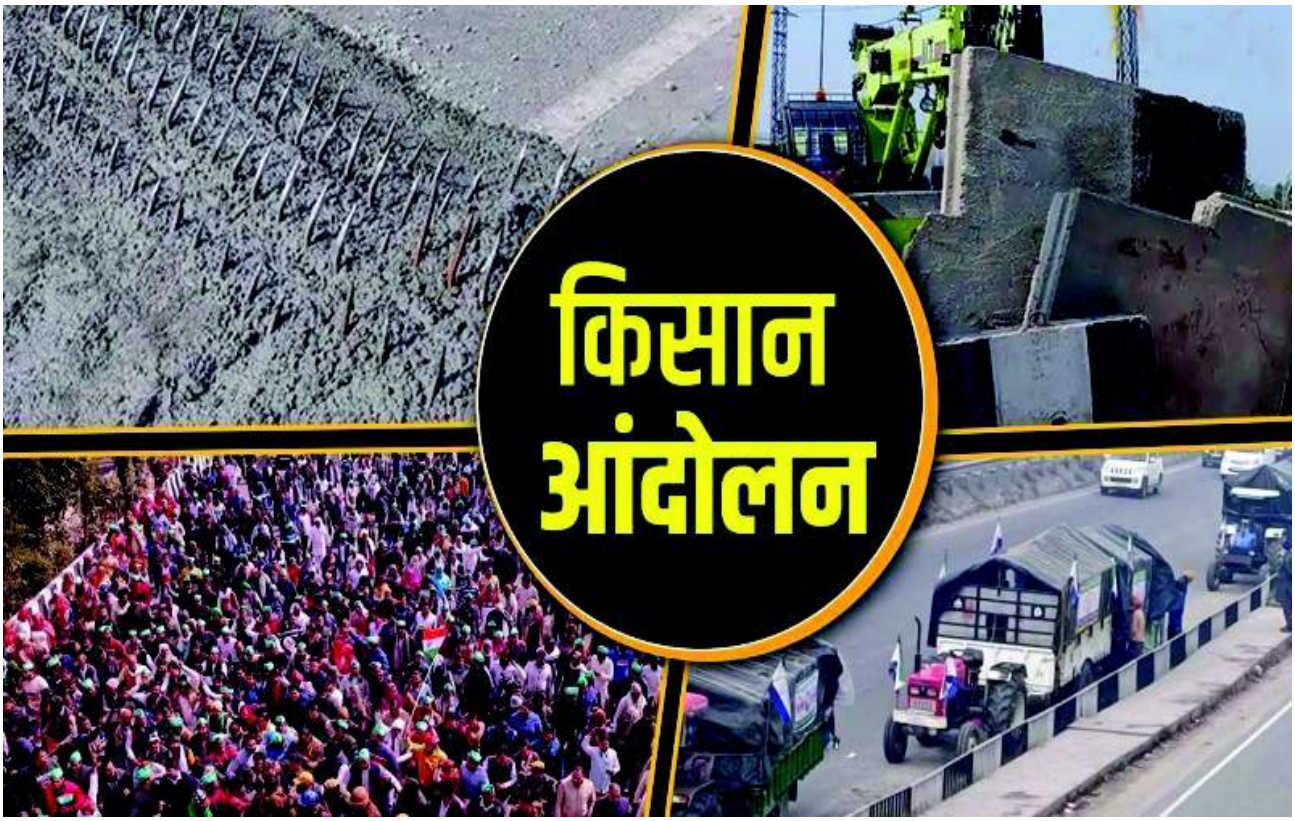

असुरक्षा, उच्च भूमिकर, नए शुल्क और अन्य दमनकारी वसूली थीं। मोपला आंदोलन का विलय खिलाफत आंदोलन में हो गया। महात्मा गांधी, शौकत अली और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने मोपला सभाओं को संबोधित किया। सांप्रदायिकता ने मोपला को खिलाफत और असहयोग आंदोलन से अलग कर दिया। दिसंबर 1921 तक आंदोलन को समाप्त कर दिया गया था।

बारदोली सत्याग्रह (1928) ब्रिटिश सरकार द्वारा गुजरात के बारदोली ज़िले में भू-राजस्व में 30ऽ की वृद्धि करने के कारण वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में बारदोली के किसानों द्वारा एक राजस्व न देने संबंधी आंदोलन का आयोजन किया गया। आंदोलन को दबाने के अंग्रेज़ों के असफल प्रयासों के परिणामस्वरूप एक जाँच समिति की नियुक्तिहुई। जाँच इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वृद्धि अनुचित थी और कर वृद्धि को घटाकर 6.03 प्रतिशत कर दिया गया।

कैसे सरकार ने हिंसक बना दिया किसान आंदोलन

फिलहाल देश में चल रहे किसान आंदोलन में अब तक 02 पुलिसकर्मियों की जान जा चुकी है। इस दौरान किसानों और पुलिस की झड़पों में 30 से अधिक पुलिसकर्मी घायल हुए हैं। एक किसान की भी मौत हुई। जानमाल के नुक्सान से ज़्यादा चर्चा इस आंदोलन के समय को लेकर भी हो रही है जिसमें राजनीतिक रंग का शक होता है। पास आते लोकसभा चुनाव को लेकर केंद्र सरकार पर दबाव तो है ही साथ ही विपक्षी दल भी इसमें अपनी राजनीतिक रोटी सेकते दिखते हैं। जो कांग्रेस आज एमएसपी को अनिवार्य कानून बनाने की मांग कर रही है, इसी कांग्रेस ने अपने शासनकाल में मुख्यमंत्रियों की सिफारिशों और एमएस स्वामीनाथन की अगुवाई में राष्ट्रीय किसान आयोग की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया था। उधर 2022 के विधानसभा चुनाव से पहले आम आदमी पार्टी ने एमएसपी पर फसलों की खरीद का आश्वासन भले ही पंजाब के किसानों को दिया हो लेकिन पंजाब में आम आदमी पार्टी सरकार अपने वादे से पीछे हटती दिखाई देती है। पंजाब सरकार जानती है कि एमएसपी पर फसलों की खरीद का विकल्प अर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं है। ऐसे केवल बीच का रास्ता ही किसानों के लिए सबसे अच्छा विकल्प है। ये रास्ता केंद्र सरकार से बातचीत और कपास, दालों और मक्का आदि 5 फसलों की एमएसपी खरीद जैसे प्रस्तावों के आसपास ही होगा।

प्रधानमंत्री पर टिप्पणी करने से सुर्खियों में डॉ. चरणदास महंत

पॉवरफुल रहा महंत का राजनीतिक जीवन

विजया पाठक

डॉ. चरणदास महंत एक भारतीय राजनीतिज्ञ, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य हैं। महंत छत्तीसगढ़ के जुझारू कर्मठ और संवेदनशील, कददावर राजनेता हैं। अपने राजनीतिक जीवन में वह कई महत्वपूर्व पदों पर आसीन रहे हैं। वह राजनीतिक जीवन निर्दाग रहा है। वह छत्तीसगढ़ राज्य के कोरबा लोकसभा क्षेत्र से सांसद रहे हैं। वह वर्तमान में छत्तीसगढ़ विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष हैं। उन्होंने पहली बार 1998 में लोकसभा सीट जीती और फिर 1999 और 2009 में फिर से चुने गए। डॉ. चरण दास महंत के लिए कहा जाता है कि वह सरल, सहज और मृदुभाषी नेता हैं। चरण दास महंत अविभाजित मध्य प्रदेश के समय से विधायक, सांसद और केंद्रीय मंत्री भी रह चुके हैं। महंत को सोनिया गांधी और राहुल गांधी का करीबी माना जाता है। अर्जुन सिंह को वह अपना राजनीतिक गुरु मानते हैं। डॉ. चरण दास महंत की गिनती छत्तीसगढ़ के कद्दावर नेताओं में होती है। चरण दास महंत सक्ती सीट से विधायक हैं। 2023 के चुनाव में बीजेपी के खिलावन साहू को हराकर जीत दर्ज की थी। मनमोहन सिंह के कार्यकाल में केंद्र में मंत्री भी रह चुके हैं। अविभाजित मध्य प्रदेश विधानसभा के दो बार विधायक रहे। महंत, मुंगेली जिले के सरगांव के रहने वाले हैं। चरणदास महंत की पत्नी ज्योत्सना महंत अभी कोरबा लोकसभा सीट से सांसद हैं। 2018 में जब राज्य में कांग्रेस की सरकार बनी थी तो चरणदास का नाम मुख्यमंत्री पद की रेस में था। हालांकि बाद में

भूपेश बघेल सीएम बने थे और चरणदास महंत को विधानसभा का अध्यक्ष बनाया गया था।

हाल ही में वह प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर एक टिप्पणी करने के मामले में सुर्खियों में हैं। महंत ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का सिर फोड़ने वाला आदमी चाहिए, का बयान देकर सुर्खियों में हैं। बयान के बाद भाजपा ने भी "मैं हूं मोदी का परिवार पहली लाठी मुझे मारे" का अभियान शुरू कर दिया है। दरअसल, यहां उनकी पत्नी व मौजूदा सांसद ज्योत्सना महंत कांग्रेस की टिकट पर चुनाव लड़ रही हैं। ज्योत्सना के सामने भाजपा की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष सरोज पांडेय चुनावी मैदान में हैं। नेता प्रतिपक्ष के बयान को लेकर चौतरफा वार शुरू हो गया है। हालांकि नेता प्रतिपक्ष ने अपने बयान में खेद प्रकट कर दिया है मगर विवाद थम नहीं रहा है। हालांकि महंत ने इस बयान के बाद माफी भी मांग ली है लेकिन बीजेपी इसको बढ़ावा देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रही है। कोरबा लोकसभा की भाजपा प्रत्याशी सरोज पांडेय ने इस मुद्दे को चुनावी मुद्दा बना दिया है। उनके बयान को लेकर भाजपा ने अभियान शुरू किया है, महंत ने कहा कि अब मुझे इस मामले में कुछ नहीं कहना है। जनता को पता है कि भ्रम और झूठ फैलाकर भाजपा राजनीति कर रही है। बता दें कि

महंत ने एक दिन पहले ही अपनी सफाई में कहा था कि प्रधानमंत्री सम्मानीय पद है। मैं उनके खिलाफ इस तरह बयान नहीं दे सकता हूं। छत्तीसगढ़ी कहावत को कुछ लोगों ने तोड़-मरोड़कर प्रचारित किया है। इस सीट पर कांग्रेस का ही वर्चस्व रहा है। कोरबा लोकसभा सीट ऐसी है जो कि परिसीमन के बाद 2009 में अस्तित्व में आई है। इस सीट पर अब तक हुए तीन चुनाव में दो बार कांग्रेस की जीत हुई। 2009 में कांग्रेस के डॉ. चरण दास महंत, 2014 में भाजपा के डॉ. बंशीलाल महतो और 2019 के चुनाव में कांग्रेस की ज्योत्सना महंत जो कि अभी भी सांसद हैं, उन्होंने चुनाव जीता था।

वह पेशे से वह एक कृषक होने के अलावा एक राजनेता और सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। उनकी रूचियों और पसंदीदा शगलों में पेंटिंग, संगीत, खेल, पढ़ना, बहस में भाग लेना, यात्रा करना और परिवार के सदस्यों के साथ समय बिताना शामिल है। छत्तीसगढ़ की भूपेश बघेल सरकार में प्रखर वक्ता और राजनेता के रूप में चरणदास महंत की आज देश भर में विशेष पहचान हैं। खास बात यह है कि चरणदास महंत अविभाजित मध्यप्रदेश में भी मंत्रीपद की प्रमुख जिम्मेदारी का निर्वहन कर चुके हैं, जिसमें उन्होंने कई प्रमुख फैसले किये जिनके लिये आज भी उन्हें याद किया जाता है और उसका श्रेय उन्हें दिया जाता है। अगर हम चरणदास महंत के राजनीतिक करियर पर नजर डालें तो 1980 से 85 तक वे पहली बार मध्यप्रदेश विधानसभा के सदस्य नियुक्त हुए। इसके बाद लगातार लोगों के बीच संपर्क बनाये रखने के लिये उन्हें दूसरी बार 1985-90 के बीच एक बार फिर विधायक चुना गया। 1988-89 में चरणदास महंत को कृषि राज्यमंत्री बनाया गया। एक सक्रिय राजनेता के रूप में अपनी छवि विकसित कर चुके चरणदास महंत लगातार तीसरी बार 1993-98 में विधानसभा के सदस्य चुने गये। इस दौरान उन्हें वाणिज्य कर विभाग का राज्यमंत्री का पद दिया गया। अपनी राजनीतिक यात्रा को सतत रखते हुए चरणदास महंत ने कई सालों तक विभिन्न पदों का दायित्व संभाला जिसमें 1995-98 में प्रमुख था गृह एवं जनसंपर्क मंत्रालय। गृहमंत्री पद पर रहते हुए महंत ने कई प्रमुख फैसले किये और प्रदेश की कानून व्यवस्था को दुरस्त करने में अहम योगदान दिया। 1999 में पहली बार वे लोकसभा सांसद के रूप में चुने गये। यही नहीं छत्तीसगढ़ विभाजन के बाद भी महंत ने कई प्रमुख पदों का दायित्व संभाला और एक बार पुनः 2009-2014 तक वे लोकसभा सदस्य के रूप में चुने गये।

चरणदास महंत ने अब तक केंद्रीय ग्रामीण विकास परिषद सलाह समिति, केंद्रीय राज्यमंत्री कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भारत सरकार, कार्यकारी अध्यक्ष प्रदेश कांग्रेस छत्तीसगढ़, अध्यक्ष छत्तीसगढ़ कांग्रेस सहित चुनाव प्रचार अभियान समिति के अध्यक्ष की भूमिका का सफल निर्वहन किया है। राजनीति के साथ-साथ चरणदास महंत लेखन के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। उन्होंने अब तक कबीर चिंतन, हिंदू कहे मोहे राम प्यारा मुसलमान रहमान, छत्तीसगढ़ के सामाजिक धार्मिक आंदोलन, आदि पर किताब लिखी हैं।

लोकसभा चुनाव: बीजेपी को बढ़त

छत्तीसगढ़ में बीजेपी को इस बार 11 में से 10 सीटें मिलती दिख रही है। वहीं कांग्रेस के खाते में एक सीट जाने का अनुमान है। छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव में कांग्रेस की हालत कमजोर हो गई है। अब लोकसभा चुनाव की तैयारी में पार्टी जुटी है। वहीं, बीजेपी ने पांच साल बाद जबरदस्त वापसी की है। अब दोनों ही पार्टियां लोकसभा चुनाव की तैयारी में जुटी है। 2019 की तुलना में 2024 में बीजेपी को सीटों का फायदा होने वाला है। दरअसल, छत्तीसगढ़ में लोकसभा की 11 सीटें हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी को 9 और कांग्रेस को दो सीट पर जीत मिली थी। यह स्थिति तब थी, जब छत्तीसगढ़ में कांग्रेस की सरकार थी। अब वहां बीजेपी की सरकार है। सर्वे के अनुसार 2024 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी को 10 सीटें मिल सकती हैं। यानी की एक सीट का फायदा हो रहा है। वहीं कांग्रेस को सिर्फ एक सीट से संतोष करना पड़ सकता है। वहीं, अगर वोट शेयर की बात करें तो सर्वे के अनुसार बीजेपी का वोट शेयर 53.9 फीसदी पहुंच गया है। वहीं कांग्रेस 38.2 फीसदी पर है जबकि अन्य सियासी दलों के खाते में 7-8 फीसदी वोट जाते दिख रहे हैं। इससे साफ है कि वोट शेयर में भी बड़ा अंतर दिख रहा है। हालांकि छत्तीसगढ़ बीजेपी नेताओं का दावा है कि हम 11 में से 11 सीटें जीतेंगे। वहीं, कांग्रेस भी लोकसभा चुनाव की तैयारी जोरों पर कर रही है।

क्या दिल्ली में लगेगा राष्ट्रपति शासन?

सुदर्शन चक्रधर

मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल की दिल्ली के शराब घोटाले में गिरफ्तारी के बाद संभवत: यह पहला मौका है, जब किसी मुख्यमंत्री के पद पर रहते हुए गिरफ्तारी हुई और उसके बाद भी उसने इस्तीफा नहीं दिया। आम आदमी पार्टी के वरिष्ठ नेता और मंत्री एक सुर में कह रहे कि केजरीवाल इस्तीफा नहीं देंगे और अपनी सरकार तो वे जेल से ही चलाएंगे। सवाल उठता है कि क्या जेल में रहते हुए मुख्यमंत्री रहा जा सकता है? और क्या जेल से सरकार चलाई जा सकती है? संविधान इस पर मौन है इसलिए ये मुद्दा बहस का है। तमाम विशेषज्ञ भी मानते हैं कि संविधान में ऐसी कोई रोक नहीं है। कानूनन कोई प्रतिबंध नहीं हैं, लेकिन प्रशासनिक रूप से ऐसा करना लगभग असंभव ही है। झारखंड विधानसभा के पूर्व स्पीकर इंदर सिंह नामधारी कहते हैं कि मुख्यमंत्री को जेल जाने पर इस्तीफा देना जरूरी नहीं है। ऐसा कोई प्रविधान नहीं है कि कोई जेल जाए, तो उसे पद छोड़ देना चाहिए। लेकिन लालू यादव से लेकर हेमंत सोरेन तक तमाम मुख्यमंत्रियों ने जेल जाने से पहले अपना इस्तीफा जो दिया, वह नैतिकता के आधार पर दिया। लेकिन अरविंद केजरीवाल ने इस्तीफा नहीं दिया, तो क्या उनकी नैतिकता मर गई? यह सवाल भी पूछा जा रहा है।

दरअसल, संविधान निर्माताओं ने कभी नहीं सोचा था कि ऐसी स्थिति भी आएगी कि कोई मुख्यमंत्री ऐसा करेगा. इसलिए इस संबंध में कोई प्रविधान नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील राकेश द्विवेदी कहते हैं कि संविधान में ऐसा कुछ लिखित नहीं है, लेकिन जेल से सरकार चलाना अब व्यावहारिक है और नैतिकता के खिलाफ भी है।

उधर, दिल्ली हाईकोर्ट ने अरविंद केजरीवाल को मुख्यमंत्री पद से हटाने की मांग वाली एक पीआईएल (यानी जनहित याचिका) पर सुनवाई करते हुए इसे खारिज

कर दिया। कोर्ट ने सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के वकील से ही पूछा कि क्या इसमें कोई कानूनी मनाही है? साथ ही कोर्ट ने कहा कि इसमें न्यायिक दखल आवश्यक नहीं है। अगर यह कोई संवैधानिक विफ लता है, तो उपराज्यपाल उसे देखेंगे। उनकी सिफारिश पर राष्ट्रपति निर्णय लेंगे। यानी हाईकोर्ट ने गेंद अब उपराज्यपाल के पाले में डाल दी है।

हाईकोर्ट के अनुसार, यह विषय ऐसा नहीं है कि इस पर कोर्ट कोई आदेश दे। कोर्ट ने यह भी कहा कि हमने दिल्ली के एलजी का बयान भी अखबारों में पढ़ा है। हमें पता है कि ये मामला उनके संज्ञान में है। फिलहाल यह मामला उन्हें ही देखने दीजिए। राष्ट्रपति शासन लगाने का आदेश कोर्ट नहीं दे सकता। हम याचिका में लगाए गए आरोपों पर कोई टिप्पणी नहीं कर रहे हैं। लेकिन यह विषय ऐसा नहीं है कि इस पर कोर्ट कोई आदेश दे।

बता दें कि दिल्ली के उपराज्यपाल वीके सक्सेना ने कहा था कि राष्ट्रीय राजधानी वाली दिल्ली सरकार जेल से नहीं चलाई जाएगी! सक्सेना की यह टिप्पणी आम आदमी पार्टी के नेताओं के उन बयानों की पृष्ठभूमि में आई थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि अरविंद केजरीवाल जेल में रहने के बावजूद मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा नहीं देंगे और जेल से ही सरकार चलाएंगे। अब अगर उपराज्यपाल मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को बर्खास्त करने की सिफारिश राष्ट्रपति से करते हैं, तो केजरीवाल को फिर सहानुभूति मिलेगी। क्योंकि मुख्यमंत्री को बर्खास्त करना मतलब पूरी सरकार को बर्खास्त करना होता है। अगर ऐसा हो गया तो फिर, आप पार्टी के तमाम कार्यकर्ता सड़कों पर उतरकर इस बात पर चिल्लाने लगेंगे कि भाजपा वालों ने एक चुनी हुई निर्वाचित सरकार को बर्खास्त कर दिया। इसकी पूरी सहानुभूति का लाभ केजरीवाल एण्ड आप कंपनी को मिलेगा। तो भाजपा के सामने और एक मुसीबत बढ़ गई है। मतलब केजरीवाल गले की ऐसी हड्डी बन गई है, जिसे आज की तारीख में भाजपा न निगल सकती है, न उगल सकती है।

इसलिए अब देखना है कि भाजपा की मोदी सरकार, जो कि फिलहाल कार्यान्वित भी नहीं है, वो दिल्ली में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू से करती है या फिर केजरीवाल को जेल से सरकार चलाने के लिए छोड़ देती है।

भारत में विलय की ओर बढ़ता पाक अधिकृत कश्मीर

प्रमोद भार्गव

पाक अधिकृत कश्मीर के संदर्भ में भारत का सब्र का फल मीठा कहावत को चरितार्थ करता दिखाई दे रहा है। इस संदर्भ में पीओके में बढ़ते पाकिस्तान सरकार के खिलाफ बढ़ते आतंकी हमले और रक्षामंत्री राजनाथ सिंह का दिया बयान महत्वपूर्ण हैं। सिंह ने कहा है कि पीओके को हासिल करने के लिए हमें कुछ ज्यादा करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यहां के लोगों पर ढाए जा रहे जुल्मों के चलते यही लोग नारे लगाने लगे हैं कि हमको भारत में विलय कर दो। इन हालातों के देखते यहां कुछ भी आश्चर्यजनक घट सकता है। पीओके पर अवैधानिक कब्जा कर लेने से यह क्षेत्र पाकिस्तान के अधिकार में नहीं हो जाता।

पीओके में बढ़ते पाकिस्तान सरकार के खिलाफ बढ़ते आतंकी हमले और रक्षामंत्री राजनाथ सिंह का दिया बयान महत्वपूर्ण हैं। सिंह ने कहा है कि पीओके को हासिल करने के लिए हमें कुछ ज्यादा करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यहां के लोगों पर ढाए जा रहे जुल्मों के चलते यही लोग नारे लगाने लगे हैं कि हमको भारत में विलय कर दो।

वैसे भी भारतीय संसद में पीओके को लेकर सर्वसम्मति से भारत का हिस्सा होने के तीन प्रस्ताव पारित हो चुके हैं। सिंह का यह बयान दर्शाता है कि अंदरूनी स्तर पर भारत सरकार पीओके के विलय पर राजनीतिक उपाय में लगी हुई है। दूसरी तरफ जिस आतंकवाद का जनक पाकिस्तान रहा है, वही आतंकवाद उसके लिए पीओके में चुनौती बनकर सामने आ रहा है। पाक में आतंकी हमले थमने का नाम नहीं ले रहे हैं। बलूचिस्तान प्रांत के तुरबाद नगर में नौसैनिक अड्डे पर आतंकवादियों ने गोली बरसाते हुए हमला किया। इसके बाद खैबर पख्तूनख्वा इलाके में चीनी नागरिकों के

एक काफिले पर हमला बोल दिया। इसमें पांच चीनी इंजीनियरों की मौत हो गई। ये इंजीनियर दासू हाइड्रो प्रोजेक्ट के निर्माण में लगे थे। इन हमलों की जिम्मेबारी बलूचिस्तान लिबरेशन आर्मी (बीएलए) की मजीद ब्रिगेड ने ली है। इस्लामाबाद से 200 किमी दूर स्थित दासू हाइड्रो प्रोजेक्ट का निर्माण चीनी कंपनी कर रही है। 2021 में भी इस परियोजना पर काम कर रहे नौ चीनी इंजीनियरों सहित 13 लोगों को बलूच हमलावरों ने मार गिराया था। पाकिस्तान में अकेले फरवरी माह में हुए 97 हमलों में 118 लोग मारे जा चुके हैं। 20 मार्च को ग्वादर बंदरगाह पर भी आतंकी हमला हो चुका है। इस हमले की जिम्मेदारी भी बलूचों ने ली है। इन हमलों के चलते पाक में नई बनी शाहबाज सरकार मुसीबतों से घिर गई है। दरअसल बलूचिस्तान प्रांत के नागरिक मानते हैं कि पाक सरकार उनके प्रांत के हितों की लंबे समय से अनदेखी कर रही है। यहां के लोग इस क्षेत्र में चीन के बढ़ते हस्तक्षेप का भी विरोध कर रहे है। दासू हाइड्रो प्रोजेक्ट और चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे के निर्माण के अंतर्गत कई परियोजनाएं पीओके में निर्माणाधीन हैं। इन परियोजनाओं का विरोध लगातार हो रहा है। लेकिन पाक सरकार धन के लालच में चीन के सुरसामुख में फंस चुकी है। देश में चल रही आर्थिक बद्हाली के कारण भी सरकार चीन का दामन नहीं छोड़ पा रही है। चीन से उसकी मित्रता का कारण धन का लालच तो है ही भारत के साथ तनावपूर्ण रिश्ते भी हैं। पाक की तरह चीन से भी भारत का सीमा पर निरंतर तनाव बना हुआ है। अब पीओके में आतंकी शक्तियां इतनी मजबूत हो गईं हैं कि पाक का ईरान और अफगानिस्तान से भी मधुर संबंध बनाए रखना मुश्किल हो रहा है।

पीओके की परिधि में आने वाले गिलगिट-बाल्टिस्तान वास्तव में भारत के जम्मू-कश्मीर राज्य के हिस्सा हैं। बावजूद 04 नवंबर 1947 से पाकिस्तान के नाजायज कब्जे में हैं। लेकिन यहां के नागरिकों ने इस बलाद कब्जे को कभी नहीं स्वीकारा।

पीओके की परिधि में आने वाले गिलगिट-बाल्टिस्तान वास्तव में भारत के जम्मू-कश्मीर राज्य के हिस्सा हैं। बावजूद 04 नवंबर 1947 से पाकिस्तान के नाजायज कब्जे में हैं। लेकिन यहां के नागरिकों ने इस बलाद कब्जे को कभी नहीं स्वीकारा। यहां तभी से राजनीतिक अधिकारों के लिए लोकतांत्रिक आवाजें उठ रही हैं और पाक सरकार इन लोगों पर दमन और अत्याचार का सिलसिला जारी रखे हुए है। साफ है, पाक की आजादी के साथ

गिलगिट-बाल्टिस्तान का मुद्दा जुड़ा हुआ है। पाक की कुल भूमि का 40 फीसदी हिस्सा यहीं है। लेकिन इसका विकास नहीं हुआ है। करीब 1 करोड़ 30 लाख की आबादी वाले इस हिस्से में सर्वाधिक बलूच हैं, इसलिए इसे गिलगिट-बलूचिस्ताल भी कहा जाता है। पाक और बलूचिस्तान के बीच संघर्ष 1945, 1958, 1962-63, 1973-77 में होता रहा है। 77 में पाक द्वारा दमन के बाद करीब 02 दशक तक यहां शांति रही। लेकिन 1999 में परवेज मुशर्रफ सत्ता में आए तो उन्होंने बलूच भूमि पर सैनिक अड्डे खोल दिए। इसे बलूचों ने अपने क्षेत्र पर कब्जे की कोशिश माना और फिर से संघर्ष तेज हो गया। इसके बाद यहां कई अलगाववादी आंदोलन वजूद में आए, इनमें प्रमुख बलूचिस्तान लिबरेशन आर्मी है।

करीब 1 करोड़ 30 लाख की आबादी वाले इस हिस्से में सर्वाधिक बलूच हैं, इसलिए इसे गिलगिट-बलूचिस्ताल भी कहा जाता है। पाक और बलूचिस्तान के बीच संघर्ष 1945, 1958, 1962-63, 1973-77 में होता रहा है। 77 में पाक द्वारा दमन के बाद करीब 02 दशक तक यहां शांति रही।

निर्वाचन की प्रक्रिया से गुजरने के बावजूद भी यहां की विधानसभा को अपने बूते कोई कानून बनाने का अधिकार नहीं है। सारे फैसले एक परिषद लेती है, जिसके अध्यक्ष पाकिस्तान के पदेन प्रधानमंत्री होते हैं। लिहाजा चुनाव के बावजूद भी यहां विद्रोह की आग सुलगी रहती है। यह आग अस्तोर, दियामिर और हुनजा समेत उन सब इलाकों में सुलगी रहती है, जो शिया बहुल हैं। सुन्नी बहुल पाकिस्तान में शिया और अहमदिया मुस्लिमों समेत सभी धार्मिक अल्पसंख्यक प्रताड़ित किए जा रहे हैं। अहमदिया मुस्लिमों के साथ तो पाक के मुस्लिम समाज और हुकूमत ने भी ज्यादती बरती है। 1947 में उन्हें गैर मुस्लिम घोषित कर दिया गया था। तब से वे न केवल बेगाने हैं, बल्कि हिंदू, सिख व ईसाइयों की तरह मजहबी चरमपंथियों के निशाने पर भी रहते हैं। मई 2010 में लाहौर में एक साथ दो अहमदी मस्जिदों पर कातिलाना हमला

बोलकर करीब एक सौ निरीह लोगों की हत्या कर दी गई थी। पीओके और बलूचिस्तान पाक के लिए बहिष्कृत क्षेत्र हैं। पीओके की जमीन का इस्तेमाल वह, जहां भारत के खिलाफ शिविर लगाकर गरीब व लाचार मुस्लिम किशोरों को आतंकवादी बनाने का प्रशिक्षण देता है, वहीं बलूचिस्तान की भूमि से खनिज व तेल का दोहन कर अपनी आर्थिक स्थिति बहाल किए हुए है। यहां महिलाओं को वोट देने का अधिकार नहीं है। गरीब महिलाओं को जबरन वेश्यावृत्ति के धंधों में धकेल दिया जाता है। 50 फीसदी नौजवानों के पास रोजगार नहीं है। 40 फीसदी आबादी गरीबी रेखा के नीचे है। 88 प्रतिशत क्षेत्र में पहुंच मार्ग नहीं हैं। बावजूद पाकिस्तान पिछले 75 साल से यहां के लोगों का बेरहमी से खून चूसने में लगा है। जो व्यक्ति अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाता है, उसे सेना, पुलिस या फिर आइएसआई उठा ले जाती है। पूरे पाक में शिया मस्जिदों पर हो रहे हमलों के

पीओके के लोग मानसिक रूप से भी आतंकित हैं। नतीजतन यहां खेती-किसानी, उद्योग-धंधे, शिक्षा-रोजगार, स्वास्थ्य-सुविधाएं तथा पर्यटन सब चौपट है। इस क्षेत्र में चीन बड़ा निवेश कर रहा है। ग्वादर में एक बड़ा सा बंदरगाह बनाया है। चीन की एक और बड़ी योजना है, चाइना-पाकिस्तान इकोनॉमिक कारिडोर इसकी लागत 3 लाख 51 हजार करोड़ है।

कारण पीओके के लोग मानसिक रूप से भी आतंकित हैं। नतीजतन यहां खेती-किसानी, उद्योग-धंधे, शिक्षा-रोजगार, स्वास्थ्य-सुविधाएं तथा पर्यटन सब चौपट है। इस क्षेत्र में चीन बड़ा निवेश कर रहा है। ग्वादर में एक बड़ा सा बंदरगाह बनाया है। चीन की एक और बड़ी योजना है, चाइना-पाकिस्तान इकोनॉमिक कारिडोर इसकी लागत 3 लाख 51 हजार करोड़ है। यह गलियारा गिलगिट-बाल्टिस्तान से गुजर रहा है। इस गलियारे के निर्माण में लगे चीनी नागरिकों की आतंकी संगठन बीएलए हत्याएं कर रहा है। चूंकि यह क्षेत्र अधिकारिक रूप से भारत का है, इसलिए भारत भी इस परियोजना का लगातार विरोध कर रहा है। पाकिस्तान रणनीतिक रूप से गिलगिट-बाल्टिस्तान को पांचवां प्रांत बना लेने की फिराक में लगा है। चूंकि यह क्षेत्र आधिकारिक रूप से भारत के जम्मू-कश्मीर प्रांत का हिस्सा है, इसलिए यहां कोई भी बदलाव कई अंतरराष्ट्रीय समझौतों का उल्लंघन होगा। पाकिस्तान यहां सुन्नी मुसलमानों की संख्या बढ़ाकर इस पूरे क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व बदलने के प्रयास में भी लगा है। इन कारणों के चलते यहां के मूल बलूचों की पाकिस्तान के प्रति जबरदस्त नाराजी है और वे निर्णायक लड़ाई लड़के भारत में विलय होने की कोशिश में लगे हैं।

चुनाव आयोग की ईमानदारी लोकतंत्र की आत्मा है

रघु ठाकुर

देश में जनतांत्रिक प्रणाली को सफल बनाने के लिए निष्पक्ष और पैसे के प्रभाव से मुक्त चुनाव होना आवश्यक है। ऐसे चुनाव के लिए एक ऐसे चुनाव आयोग की आवश्यकता है जो नियमों में भी सुधार करें और अपनी कार्य पद्धति को भी आमजन के लिए सुलभ बनाए। पिछले वर्षों में चुनाव आयोग के बारे में हम लोग लगातार लेख या मीडिया के माध्यम से सुझाव देते रहे हैं। देश में इनकी काफी चर्चा भी हुई है। विशेषतः 1980 के बाद चुनाव आयोग की भूमिका पर निरंतर देश में चर्चा चलती रही है। हमारे देश में एक हिस्सा ऐसा है जो यह मानता है कि टीन शेषन सबसे उपयुक्त और योग्य चुनाव आयुक्त थे, जिन्होंने चुनाव प्रणाली को बहुत हद तक सुधारा और यह उनका व्यक्तिगत प्रयास था जिससे चुनाव प्रणाली को सुधारने में उन्होंने सफलता हासिल की। हालांकि मैं ऐसा कहने का कोई तार्किक कारण नहीं देखता हूं। उनके कार्यकाल में ही चुनाव आयोग ने सुप्रीम कोर्ट में एक याचीका दायर की थी जिसमें चुनाव आयोग के चुनाव कराने के लिए अधिकारों के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय की अपेक्षा की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग को यह अधिकार दिया था कि उनके पास चुनाव को निष्पक्ष कराने के लिए सारे अधिकार हैं। मुझे स्मरण है की सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में लिखा था कि चुनाव आयोग को निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए सारे अधिकार हैं। इस फैसले का इस्तेमाल कर कुछ सुधार करने का प्रयास चुनाव आयुक्त के रूप में श्री शेषन साहब ने किया था। परंतु वह सुधार कोई बहुत उल्लेखनीय परिणाम नहीं दे सका।

किसी बड़े पद की कुर्सी पर बैठकर वहां से चीजों को देखना बहुत वस्तु परक नहीं होता। यही स्थिति श्री शेषन के साथ हुई थी। उन्होंने अपने पद की धमक तो पैदा की। अधिकारियों को धमकाया भी परंतु चुनाव प्रणाली के सुधार के लिए कुछ विशेष नहीं कर पाए। शीर्ष पदों पर बैठकर की जाने वाली बातें और वास्तविक जमीन पर कितना अंतर होता है यह तब स्पष्ट हो गया

जब टीएन सेशन चुनाव आयुक्त के पद से सेवानिवृत होने के बाद खुद लोकसभा का चुनाव लड़े और न केवल बुरी तरह पराजित हुए बल्कि जमानत भी नहीं बचा पाए। शायद तब उनको महसूस हुआ होगा कि देश की व्यवस्था के नीचे के हालात और उन्हें उपर से बैठकर देखने में कितना फर्क है।

चुनाव आयोग को देश में निष्पक्ष, सत्ता मुक्त, धर्म और जाति के दवाब से मुक्त और धन से मुक्त चुनाव कराना है तो इसके लिए एक व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है। आज हमारे देश के चुनाव धन तंत्र, धर्म तंत्र, बलतंत्र और सत्ता तंत्र इन चारों से प्रभावित

चुनाव आयुक्त के नियुक्ति को लेकर एक फैसला दिया था जिसमें त्री सदस्य चयन समिति बनना थी। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और भारत के मुख्य न्यायाधीश। इन तीन लोगों की कमेटी के द्वारा चुनाव आयोग का चयन होना था परंतु भारत सरकार ने संसद में कानून पारित कर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को लगभग निरस्त कर दिया। और भारत के मुख्य न्यायाधीश की भूमिका को उसमें शामिल नहीं रहने दिया यानी, परिणाम यह है कि अब भारत सरकार के हाथ में ही यह पूर्ण अधिकार है कि वह अपने मन का चुनाव आयोग बनाए और जब सरकार चुनाव

70 लाख है और विधानसभाओं की भी 30 से 40 लाख है। क्या देश का कोई गरीब आदमी या गरीब प्रत्याशी 70 लाख रुपए खर्च करके लोकसभा और 40 लाख रुपए खर्च करके विधानसभा का चुनाव लड़ सकता है। कहने को भले है कि देश में वोट का सभी को समान अधिकार हो यानी एक व्यक्ति एक वोट है परंतु चुनाव लड़ने का समान अधिकार नहीं है। गरीब आदमी को या ईमानदार प्रत्याशी को तो एक प्रकार से चुनाव की प्रक्रिया से बाहर ही कर दिया गया है और अगर उसे चुनाव लड़ना है तो फिर उसे धनपतियों के पैसों पर या राजनीतिक

है। और इसलिए चुनाव दिखाने को भले ही निष्पक्ष लगे परंतु वे कहीं ना कहीं दूषित होते हैं। इन चारों में से कोई ना कोई बुराई उन्हें प्रभावित करती है। मैं मानता हूं कि यह अकेले चुनाव आयोग को संभव नहीं है जब तक की सत्ता और जनता भी उनके साथ ना हो। और जब सत्ता आमजन को गुमराह कर या किसी अन्य प्रकार से प्रभावित कर बनती है तो उससे यह उम्मीद करना कि वह निष्पक्ष चुनाव आयोग चाहेगा व्यवहारिक नहीं है। इसका प्रमाण हाल ही में सामने आया जब सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में आयोग अपने निर्वाध अधिकारों के तहत बनाएगी तो फिर चुनाव आयोग का सत्ता तंत्र से मुक्त होना कैसे संभव है?

आज हम देख रहे हैं कि पैसे का दुरुपयोग चुनाव में भरपूर होता है। चुनाव आयोग के पास इसके लिए कोई ठोस कार्यक्रम या सोच नजर नहीं आती। चुनाव आयोग ने लगातार विधानसभा और लोकसभा के चुनाव की खर्च सीमा को बढ़ाया है। चुनाव के खर्च की सीमा को बढ़ाना क्या समस्या का हल है। आजकल संसद के चुनाव के खर्च की सीमा लगभग

दलों के भ्रष्ट चंदे पर निर्भर होना होगा। जिसका अर्थ होगा कि या तो पूंजीपतियों की गुलामी या फिर दलीय गुलामी। यह एक प्रकार से देश में, दलों में, आंतरिक लोकतंत्र खत्म हो रहा है। निर्वाचित सांसद या विधायक जो दल के, नोट दल के वोट और दल के टिकट पर निर्भर करते हैं उनकी स्वतंत्रता चेतना समाप्त हो जाती है। उन्हें अपना राजनैतिक भविष्य, अपने परिवार का भविष्य अनुशासन के नाम पर आंख मुंह बंद कर शीर्ष नेतृत्व के समर्थन में दिखता है। वह आगामी चुनाव में हिस्सेदारी

के लिए या सत्ता में साझेदारी के लिए अपनी आत्मा को गिरवी रख देते हैं तथा दलीय नेतृत्व के आज्ञाकारी गुलाम जैसे बन जाते हैं। यह एक प्रकार से बंधुआ मजदूर जैसे हो जाते हैं। इस दलीय तानाशाही को आजकल हाई कमांड और शीर्ष नेतृत्व को सुप्रीमो कहा जाता है। क्या यह शब्द लोकतांत्रिक शब्द कोष का है? यह तो माफिया जगत का जुमला है। इन बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए भी चुनाव आयोग को सोचना चाहिए। खर्च की सीमा बढ़ाने के बजाय चुनाव आयोग को यह प्रयास करना चाहिए कि जितने भी प्रत्याशी हो उन सभी को समानता से चुनाव लड़ने का अधिकार हो और इसके लिए यह आवश्यक होगा कि प्रत्याशियों का चुनाव खर्च सारा चुनाव आयोग के द्वारा हो। चुनाव की प्रक्रिया शुरू होते ही प्रत्याशियों के निजी प्रचार के सारे काम समाप्त हो जाए। चुनाव आयोग प्रत्याशियों को मात्र दो-दो गाड़ियां उपलब्ध कराये जिन पर वह अपना जनसंपर्क करें। परंतु चुनाव की अवधि में एंबुलेंस सामूहिक यातायात साधन जैसे वाहन छोड़ कर शेष निजी वाहनों पर चलने पर रोक लगा दी जाए। अगर 10-15 दिन के लिए यह रोक हो जाएगी तो इससे कोई बड़ा अंतर पड़ने वाला नहीं है। परंतु एक बहुत बड़ा भ्रष्टाचार का कारण रूक जाएगा। इसी प्रकार से पार्टीयों के घोषणा पत्र, प्रत्याशियों के घोषणा पत्र, वचन पत्र या जीवन परिचय यह भी चुनाव आयोग के तंत्र के माध्यम से बँटवाये जा सकते हैं। सामूहिक सभाएं हो सकती हैं जिनमें सभी दलों के लोग अगर सभाओं में कुछ कहना चाहते हैं तो एक ही चुनाव आयोग के मंच से निश्चित समय में कह सकते हैं। मीडिया में भी सबके लिए समान अधिकार मिलना चाहिए ताकि सब की बात पहुंच सके। अगर यह होगा तो फिर चुनाव में धन-तंत्र का प्रभाव काफी हद तक समाप्त हो सकता है। हमारे देश में जाति और धर्म भी चुनाव को प्रभावित करते हैं। इसके बारे में भी कुछ नियम बनाये जा सकते हैं क्या कोई ऐसा आदर्श समय आ सकता है या लाया जा सकता है और क्या चुनाव आयोग इसमें कोई भूमिका अदा कर सकता है। जिस जाति की बहुलता हो उस जाती का प्रत्याशी वहां से ना बन सके। डॉक्टर हरि सिंह गौर ने एक सुझाव दिया था जो बहुत ही माकूल है। उन्होंने कहा था कि जीतने वाले प्रत्याशी के लिए जब तक एक निश्चित

हमारे देश में जाति और धर्म भी चुनाव को प्रभावित करते हैं। इसके बारे में भी कुछ नियम बनाये जा सकते हैं क्या कोई ऐसा आदर्श समय आ सकता है या लाया जा सकता है और क्या चुनाव आयोग इसमें कोई भूमिका अदा कर सकता है। जिस जाति की बहुलता हो उस जाती का प्रत्याशी वहां से ना बन सके।

मात्रा में दूसरे धर्म वाले के वोट न मिले तब तक जीता न माना जाय। उदाहरण के लिए अगर यह नियम बन जाए कि हिंदू प्रत्याशी के लिए न्यूनतम अन्य धर्म वाले लोगों के जैसे मुस्लिम सिख इसाई आदि है कुछ प्रतिशत मत मिले तभी वह जीता माना जाए और इसी प्रकार से यह नियम सभी धर्म वालों पर उनके बहुमत या अधिकांश जातीय मतों के इलाकों में लागू हो। इसी प्रकार के नियम जाति के लिए भी बनाये जा सकते हैं।

चुनाव आयोग ने पिछले दिनों जो नियम बनाए हैं वह बहुत अव्यवहारिक हैं और केवल चुनाव का खर्च बढ़ाने वाले हैं। पिछले दिनों चुनाव आयोग ने चुनाव के नामांकन का प्रोफार्मा इतना बड़ा बनाया है और इतना उलझा हुआ है कि उसे भरने के लिए प्रत्याशी समर्थ नहीं होते। आजकल नामांकन फार्म भरवाने के लिए वकीलों का सहयोग लेना पड़ता है और 5000 से लेकर 25000 और कहीं-कहीं तो लाख रु पए तक वकील नामांकन करने के पैसे ले रहे हैं। इसी प्रकार चुनाव के हिसाब किताब को रखना रजिस्टर के साथ चेक करना यह खानापूर्ति भी एक तकनीकी काम है जिसके लिए आजकल विशेषज्ञ कर्मचारी लगाए जाते हैं यानी लाखों रु पए तो केवल इसी तकनीकी पर प्रत्याशियों को खर्च करना पड़ रहा है। सामान्य प्रत्याशी के लिए यह बड़े संकट हैं और और इन खर्चों को करना भी उनके बस में नहीं है। इसी प्रकार चुनाव आयोग ने सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के नाम पर यह नियम बनाया है कि हर प्रत्याशी अपने बारे में चल रहे मुकदमा और सजा आदि की जानकारी देगा। तथा उसे यह जानकारी प्रत्याशी और प्रत्याशी को टिकट देने वाला दल स्थानीय कम से कम दो प्रमुख अखबारों में और दो मीडिया चैनलों में प्रकाशित करायेंगे और आजकल अखबारों में इनको छपाना या टीवी चैनल पर इनको दिखाना कितना महंगा काम है। कोई ईमानदार पार्टी इसके लिए कहां से पैसा लाएगी। चुनाव आयोग यह कर सकता था की प्रत्याशियों से प्राप्त जानकारी को अपनी ओर से मीडिया में दे और और मीडिया समूहों को छापने को आदेश दे। यह तो उचित था परंतु चुनाव आयोग ने जो रास्ता निकाला है वह एक प्रकार से ईमानदार प्रत्याशियों को चुनाव से बाहर करने वाला है। मतदान के दिन पोलिंग एजेंट फिर काउंटिंग एजेंट और और मतदान के दिन लगाए जाने वाले टेंट आदि का खर्च लाखों करोड़ तक होता है। क्या चुनाव आयोग इन

पर रोक नहीं लगा सकता। क्या चुनाव आयोग मतदान एजेंट, पोलिंग एजेंट और मतगणना के एजेंट को अपनी ओर से खाना नहीं खिला सकता है? यह सारे काम चुनाव आयोग आसानी से कर सकता है परंतु चुनाव आयोग की भूमिका अलग प्रकार की है। दरअसल हो यह रहा है कि चुनाव आयोग खर्चे पर ऐसे नियम बना रहा है की जिससे देश में दो दलीय प्रणाली बन जाए और देश में धीरे-धीरे छोटे दलों, वैचारिक दलों और ईमानदार प्रत्याशियों के लिए कोई चुनावी भूमिका ही न बचे। यह एक प्रकार से भारतीय लोकतंत्र के लिए जनतंत्र से हटकर कार्पोरेट लोकतंत्र में बदलने का उपक्रम है। चुनाव आयोग ने अपनी भूमिका में भी सभी दलों की राय लेना या सबको बराबर का महत्व देना के सिद्धांत को नहीं अपनाया है। कोई चर्चा अगर चुनाव आयोग करता भी है तो केवल मान्यता प्राप्त दलों को ही सहभागी बनाता है। क्या हिंदुस्तान के सारे बौद्धिक विचारों का ठेका या सुधार का ठेका मात्र 40 से 50 फीसदी मतदाताओं के प्रतिनिधि जमातों के पास ही है? क्या बकाया 50-60 फीसदी मतदाताओं का कोई विचार नहीं है। क्या उनकी सोच का कोई महत्व नहीं है? परंतु चुनाव आयोग ने अपने आप को सीमित हिस्सों में समेट लिया है। एक खास राजनैतिक तबके में समेट लिया है। चुनाव आयोग कोई सक्षम कार्यवाही भी नहीं करता।

अक्सर ऐसा होता है कि, आचार संहिता लागू होने के बाद बड़ी पार्टीयां/सरकार/विशेषतः बड़े दल और ताकतवर प्रत्याशी अपनी चुनावी जरूरत के हिसाब से घोषणाएं कर देते हैं और उन्हें

चुनाव आयोग या तो नजरंदाज कर देता है परंतु उन्हें चुनाव आयोग दंडित नहीं करता। कभी-कभी नोटिस भी दे देता है परंतु कोई कार्यवाही नहीं करता। क्या चुनाव आयोग को आचार संहिता के उल्लंघन करने वाले या प्रत्याशियों के उपर प्रतिबंधात्मक कार्यवाही नहीं करनी चाहिए? क्या उनका रजिस्ट्रेशन या मान्यता समाप्त नहीं करनी चाहिए? परंतु चुनाव आयोग वहां पर लगभग मूकदर्शक जैसा बन जाता है। इसी प्रकार से चुनाव आयोग अन्य चुनावी अपराधों के लिए भी समान व्यवहार नहीं करता है। जो लोग अपने भाषणों में घृणा के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं उन्हें भी चेतावनी दे दी जाती है परंतु उनकी योग्यता को समाप्त नहीं करता। उन पर रोक नहीं लगाई जाती। ऐसे और भी कई कदम है जो यह सिद्ध करते हैं कि चुनाव आयोग या तो निष्पक्षता चाहता नहीं है या फिर व्यवस्था से टकराने की हिम्मत नहीं करता है। पार्टियां घोषणा पत्र जारी करती हैं परंतु लागू करने की जवाबदारी या बाध्यता उनकी नहीं होती। चुनाव आयोग को यह करना चाहिए कि वह सभी दलों या प्रत्याशियों का घोषणा पत्र रजिस्टर्ड पंजीकृत कराये। जिसमें समयबद्ध सीमा के अंदर उनके घोषित कार्यक्रम को पूरा करने का वचन हो और अगर निर्धारित अवधि में अपना वचन पूरा नहीं कर पाते हैं तो उनका चुनाव रद्द किया जाए। उनकी मान्यता रद्द कर दी जाय। और उन दलों का पंजीकरण रद्द कर दिया जाए तथा ऐसे प्रत्याशियों के उपर भी चुनाव लड़ने की रोक लगाई जाए। आज एक प्रत्याशी कई कई जगह से लोकसभा या विधान सभा का चुनाव लड़ते हैं। क्या इस पर रोक नहीं लगाई जानी चाहिए। प्रत्याशी जब कई जगह से लड़ता है और वह अगर दो स्थान से जीत जाता है तो दो जगह से में से एक जगह से त्याग पत्र दे देता है। वहां पर पुन चुनाव होता है ऐसे प्रत्याशियों के उपर रोक लगनी चाहिए। होना यह चाहिए कि चुनाव आयोग यह नियम बनाए की व्यक्ति किसी एक ही जगह से चुनाव का प्रत्याशी हो सकता है। इसी प्रकार पार्टियों का आचरण हम देखते हैं कि वह एक व्यक्तिको कई कई लोकसभा क्षेत्रों से प्रत्याशी बनाते हैं और जीतने के बाद फिर इस्तीफा दिलाकर विधानसभा में लड़ा देते हैं। जो व्यक्ति विधानसभा में है उसे लोकसभा में लड़ा देते हैं। और फिर जीतने के बाद उस क्षेत्र में पुनरू चुनाव होता है। चुनाव आयोग को नियम बनाना चाहिए कि जो व्यक्ति जिस स्थान से चुनाव लड़ता है अगर वह लोकसभा का लड़ता है तो लोकसभा के लिए, विधानसभा का लड़ता है तो विधानसभा के लिए उसे पूरी अवधि तक उसी में रहना होगा यानी विधायक चुना जाए

तो वह 5 साल विधायक रहे और सांसद चुना जाए तो 5 साल सांसद रहे। यह भी फैसला होना चाहिए। दल बदल के बारे में भी कोई ठोस निर्णय कर नीति बनाई जानी चाहिए। यह भी फैसला हो कि चुनाव की घोषणा के 6 माह पूर्व से प्रतिबंध लग जाए और कोई व्यक्ति दल बदल ना कर सके। अगर कोई व्यक्ति 6 माह के भीतर दल बदल करता है तो उसे चुनाव में लड़ने की पात्रता नहीं हो। यानी दल बदल करने वाले को कम से कम 5 साल इंतजार करना पड़े।

चुनाव चिन्ह आवंटन के भी जो नए नियम चुनाव आयोग ने बनाए हैं वह त्रुटि पूर्ण है। और एक प्रकार से झूठ बोलने वालों व गलत जानकारी देने वालों के लिए सुविधा देते हैं। या फिर किसी दल या व्यक्ति के लिए झूठ बोलने के लिए बाध्य करते हैं। जैसे कि अगर कोई दल या व्यक्ति यदि लिखकर देगा कि वह 05 फीसदी कुल सदस्य संख्या के प्रत्याशी खड़ा करेगा तो उसे एक चुनाव चिन्ह मिलेगा। परिणाम यह होता है कि लोग दल बनाते हैं झूठ वचन देते हैं, या फिर वचन देकर एक चुनाव चिन्ह ले लेते हैं और उसका दुरुपयोग करते हैं। होना यह चाहिए कि हर पंजीकृत दल के लिए जो मुक्त चुनाव चिन्ह है, उनमें से कोई एक चुनाव चिन्ह लेने का अधिकार हो। जितने प्रत्याशियों को लडाने की क्षमता हो उतने प्रत्याशियों को समान चिन्ह मिले। चुनाव आयोग को इन सारे सवालों पर सोचना होगा और एक निष्पक्ष चुनाव आयोग कैसे गठित हो, चुनाव निष्पक्ष जाति, धन, धर्म और दबाव से कैसे मुक्त हो इससे संबंधित उपाय भी नियमों में सुधार कर करना होगा। चुनाव आयोग को मतदान के लिए भी कुछ और सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। आजकल ऑनलाइन का जमाना है। क्या चुनाव आयोग यह फैसला नहीं कर सकता कि व्यक्ति अपने घर से भी ऑनलाइन वोट कर सके और उसके किए हुए मतदान की पर्ची चुनाव आयोग के पास सुरक्षित रहे? ताकि कभी उसका मिलान करना जरूरी हो तो किया जा सके। इससे भी मतदान का प्रतिशत बढ़ेगा और बहुत सारे लोग जो भीड़ की वजह से मतदान करने नहीं जा पाते या नहीं जाना चाहते हैं वह भी अपना मत दे सकेंगे।

हालांकि इन सुधारों पर अमल करना आसान नहीं है। देश के जन मत को भी इन सवालों के साथ खड़ा होना होगा। सरकार अकेले सुधार नहीं कर पाएगी जब तक की जनता का दबाव नहीं होगा। डा लोहिया कहते थे कि संसद तब तक कोई अच्छा कानून पारित नहीं करती जब तक कि जनता का दवाब न हो।

सरकार रूपी रोटी को उलटते-पलटते रहें

रघु ठाकुर

2024 के लोकसभा चुनाव देश के लिये विशेष महत्व और चिंता के चुनाव है। जहां एक तरफ देश का एक बौद्धिक हिस्सा चुनाव के बाद की संभावनाओं को लेकर आशंका व्यक्तकर रहा है तो वहीं दूसरी ओर देश के ग्रामीण और आम आदमी प्रधानमंत्री के प्रति उत्साह से सराबोर है। विशेषतः राम मंदिर के निर्माण, फिर प्राण प्रतिष्ठा, फिर अबूधावी में स्वामी नारायण मंदिर का शिलान्यास और अब बनारस की ज्ञानव्यापी और मथुरा के श्रीकृष्ण मंदिर को लेकर एक जुनूनी वातावरण जैसा है। देश के बौद्धिक जगत के एक बड़े हिस्से में जो आशंकायें हैं वह हो सकता है कुछ कि राजनैतिक प्रतिद्वंदिता की वजह से भी हों या सत्ता हासिल करने के लिये पिछले कुछ समय से जिस प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप चुनावी बहस का आधार बनाये जाते हैं उन्हें देखते हुए इन आशंकाओं के पूर्वाग्रह होने के आरोप को भी एकदम नकारा नहीं जा सकता। परंतु कुछ समय से और विशेषतः मप्र, छग और राजस्थान के विधानसभा चुनाव में भाजपा की कार्य पद्धति में जो परिवर्तन दिख रहे हैं वे कुछ आशंकाओं को सिद्ध तो करते हैं। वैसे तो पिछले लगभग आजादी के बाद से ही राज्यों के मुख्यमंत्रियों के चयन में देश के सत्ताधारी दल के केंद्रीय नेतृत्व और प्रधानमंत्री का निर्णायक हस्तक्षेप रहा है। परंतु पिछले 55 वर्षों से यानि 1971 में श्रीमती इंदिरा गांधी के बहुमत से जीत जाने के बाद हाईकमान के नाम से मुख्यमंत्री नामजदगी की परंपरा शुरू हुई और यह बीमारी यहां तक पहुंची कि

जहां एक तरफ देश का एक बौद्धिक हिस्सा चुनाव के बाद की संभावनाओं को लेकर आशंका व्यक्त कर रहा है तो वहीं दूसरी ओर देश के ग्रामीण और आम आदमी प्रधानमंत्री के प्रति उत्साह से सराबोर है। विशेषतः राम मंदिर के निर्माण, फिर प्राण प्रतिष्ठा, फिर अबूधावी में स्वामी नारायण मंदिर का शिलान्यास और अब बनारस की ज्ञानव्यापी और मथुरा के श्रीकृष्ण मंदिर को लेकर एक जुनूनी वातावरण जैसा है।

चुनाव के बाद पार्टियों के विधायक दल चाहे मुख्यमंत्री के पद का चुनाव हो या नेता प्रतिपक्ष का चयन हो, चयन करने के लिये स्वतंत्र नहीं होते तथा एक लाइन का प्रस्ताव पारित करते हैं कि हाईकमान को अधिकार दिया जाता है। यह एक प्रकार से दलों में लोकतांत्रिक प्रणाली का समापन और चरम व्यक्तिवाद और केंद्रीयकरण का उदभव था। यह चलन कांग्रेस के अलावा क्षेत्रीय पार्टियों में भी रहा क्योंकि क्षेत्रीय पार्टियों के राज्य प्रमुख जो होते हैं वे स्वयंभू सर्वेसर्वा होते हैं।

हालांकि भाजपा में यह चलन एकदम उस रूप में शुरू नहीं हुआ था जिस रूप में कांग्रेस में आया था। और वहाँ एक स्तर पर विधायकों की राय को भी जाना जाता था, जो संघ के लोग संगठन मंत्री होते थे वे भी अघोषित रायसुमारी विधायकों में करते थे और इन सब सूचनाओं के आधार पर केंद्रीय नेतृत्व मुख्यमंत्री के पद का चयन करता था। परंतु इन तीन राज्यों के चुनाव में अप्रत्याशित और विशाल बहुमत की जीत ने भाजपा के केंद्रीय नेतृत्व और विशेषतः प्रधानमंत्री को एक छत्र शक्तिशाली बना दिया है तथा केंद्रीयकरण का चरम रूप देखने को मिल रहा है। इन तीनों राज्यों में मुख्यमंत्रियों की नामजदगियाँ बगैर किसी रायशुमारी के सीधे केंद्रीय नेतृत्व ने की है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को दिखाने का प्रयास भी नहीं किया। विधायक दलों की बैठक में जो केंद्रीय पर्यवेक्षक भेजे गये उन्होंने विधायकों को एक पर्ची दिखाकर बता दिया कि यह केंद्र का निर्णय है और विधायकों ने बिना चू-चपड़ के पर्ची के आदेश को शिरोधार्य किया। पर्ची से मुख्यमंत्री के जन्म की यह नई परिपाटी जो भाजपा में शुरू हुई है यह लोकतांत्रिक तो नहीं ही है इसके साथ ही एक खतरनाक केंद्रीयकरण की भी शुरुआत है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संचालक और उनकी टीम की क्या भूमिका है मैं नहीं जानता, परंतु इसके पहले तक विधायक दलों के चुनाव में जो भूमिका संगठन मंत्रियों के माध्यम से संघ की सुनने या जानकारी में आती थी वह इस बार नहीं लग रही है। हालांकि संघ का शिक्षण व संस्कार भी एक अंधानुकरण का है, याने जिस प्रकार एक गड़रिया समूचे भेड़ों के समूह को हाँकता है और वे उसका आदेश मानकर चलती हैं वही अनुशासन की परिपाटी संघ की रही है। एक राजनैतिक दल के रूप में जनसंघ व भाजपा इस परिपाटी से अभी तक कम से कम दिखावे में मुक्त थी परंतु अब वह दिखावे का हिस्सा भी भाजपा ने छोड़ दिया। हालांकि इसका एक अच्छा भी परिणाम हुआ है कि लंबे समय तक मुख्यमंत्रियों के पदों पर बैठे रहे जो अपना गुट या समर्थकों अथवा कृपा वालों का गुट बनाकर स्थाई जैसे हो गये थे, उनके हाथ से सत्ता छिन गई। निरंतर और स्थाई सत्ता, जड़ता और तानाशाही पैदा करती है। इसलिये सत्ताधारी राजनैतिक दलों में भी परिवर्तन होना चाहिए। मेरी राय में तो हर 5 सालों में नेतृत्व में सत्ता के व संगठन के दोनों में परिवर्तन होना चाहिए। दलों के सत्ता और संगठन के नेतृत्व में परिवर्तन होते रहने से नया नेतृत्व उभरेगा तथा परिवारवाद भी कम होगा। यह लोकतंत्र के लिये भी शुभ है और नये नेतृत्व के लिये उभरने के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार पुराना वृक्ष जिसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं, वह सारा रस खींच लेता है और अपने नीचे आस-पास किसी नये पौधे को नहीं पनपने देता वही स्थिति राजनीति की भी होती है।

एक जो दूसरा चिंताजनक पहलू है वह भी विचारणीय है। इन विधानसभा के चुनाव में और चुनाव के बाद पार्टी और सरकार के कार्यक्रम के नाम पर एक नया जुमला शुरू हुआ है, वह है मोदी गारंटी। विधानसभा चुनाव में स्वतः प्रधानमंत्री ने मोदी गारंटी का सभाओं में उल्लेख किया। यह कहते हुये कि मोदी गारंटी मतलब उसका क्रियान्वयन होना निश्चित है। इस कथन का एक अर्थ यह हुआ कि जो वायदे सूबाई सरकार के मुखिया

हर 5 सालों में नेतृत्व में सत्ता के व संगठन के दोनों में परिवर्तन होना चाहिए। दलों के सत्ता और संगठन के नेतृत्व में परिवर्तन होते रहने से नया नेतृत्व उभरेगा तथा परिवारवाद भी कम होगा। यह लोकतंत्र के लिये भी शुभ है और नये नेतृत्व के लिये उभरने के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार पुराना वृक्ष जिसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं, वह सारा रस खींच लेता है और अपने नीचे आस-पास किसी नये पौधे को नहीं पनपने देता वही स्थिति राजनीति की भी होती है। जिस प्रकार का मोदी गारंटी और मोदी का चित्र और नाम का प्रचार हो रहा है उससे एक ओर आशंका को बल मिलता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि नरेन्द्र मोदी और भाजपा आगामी लोकसभा के चुनाव में 400 की संख्या लाने के बाद देश में संवैधानिक ढांचे को बदल दें और अभी देश ने जो संसदीय लोकतंत्र स्वीकार किया है उसे बदलकर राष्ट्रपति प्रणाली लाने का भीतर का लक्ष्य हो।

कर रहे थे उनके क्रियान्वयन की गारंटी नहीं थी बस केवल प्रधानमंत्री जी के वायदे के क्रियान्वयन की गारंटी है तथा विधानसभा चुनाव की जीत के बाद भी यही कहा गया कि जीत का कारण केवल मोदी गारंटी है। याने देश की जनता का विश्वास एक मात्र केवल मोदी जी पर ही है और अब भाजपा शासित सभी राज्यों पर हर विज्ञापन में सिर्फ दो ही चित्र दिखते हैं उपर प्रधानमंत्री का, नीचे मुख्यमंत्री का।

इतना ही नहीं राज्यों में हो रहे छोटे बड़े हर काम का लोकार्पण, विमोचन, शिलान्यास और शुरु आत प्रधानमंत्री जी या तो सशरीर उपस्थित होकर या फिर वर्चुअली याने वीडियो कांफ्रेंस से कर रहे हैं और उनके हर कार्यक्रम और भाषण को राज्यों में मंत्रियों, मुख्यमंत्री, सांसदों, विधायकों और पदाधिकारियों को सुनना और देखना अपरिहार्य है। प्रधानमंत्री का कार्यक्रम कहने को सरकारी होता है, खर्च और व्यवस्था पूर्णतः सरकारी होती है परंतु वह पूर्णरूपेण दलीय कार्यक्रम होता है। प्रधानमंत्री जी के कार्यक्रम के नाम पर इन आयोजनों में सभी बड़े-छोटे नौकरशाह और कर्मचारी भी शामिल होते हैं यह एक प्रकार से नौकरशाही का दलीयकरण है और दलों का नौकरशाहीकरण है।

भारतीय संविधान ने देश के प्रशासन तंत्र को याने नौकरशाही को दलीय राजनीति से मुक्त रखा है। हमारे देश में इन्डपेंडेंट ब्यूरोक्रेसी है। कमिटेड ब्यूरोक्रेसी नहीं है। दुनिया में कई ऐसे देश हैं जहां कमिटेड याने प्रतिबद्ध नौकरशाही है। जैसे अमेरिका में यह परंपरा है कि राष्ट्रपति के चुनाव के बाद पिछले राष्ट्रपति के विश्वसनीय उच्च नौकरशाह बदल जाते हैं और नव नियुक्त राष्ट्रपति अपने पक्ष के नौकरशाहों को लाता है। कम्युनिष्ट देशों में तो दलीय तंत्र ही सत्ता तंत्र होता है। वहां दल के संगठन का निर्वाचन होता है और वही जनमत का निर्णय मान लिया जाता है। यह साम्यवादी तानाशाही होती है परंतु भारत और यूरोप के लोकतांत्रिक देशों में अभी तक यह चलन नहीं था। भारत की ब्यूरोक्रेसी को शायद पहले चरण में कमिटेड ब्यूरोक्रेसी बनने के लिये मानसिक रूप से तैयार किया जा रहा है। प्रधानमंत्री जी संसद से लेकर सड़क तक और अब उनकी पार्टी भी मोदी इस बार चार सौ पार का नारा लगा रही है। एक राजनैतिक दल के रूप में अपना लक्ष्य तय करने का अधिकार सभी दलों को होता है और उनको भी है परंतु लगातार चार सौ की सख्या के उल्लेख के पीछे कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक संकेत भी हो सकते हैं जैसे भारतीय संविधान को बदलने के लिये और नया एक धर्म के देश का संविधान लाने के लिये, न्यायपालिका को सत्तापरक बनाने व उसकी स्वतंत्रता समाप्त करने के लिये संसद का तीन चौथाई सदस्य संख्या घोषित रूप से नहीं पर अघोषित रूप से जरूरी है और मौखिक प्रचार से गांव-गांव में यह कहा भी जा रहा है कि मोदीजी को हमें इसलिये 400 की संख्या में जिताना है कि वे संविधान को बदल सकें और हिंदू राष्ट्र बना सकें।

जिस प्रकार का मोदी गारंटी और मोदी का चित्र और नाम का प्रचार हो रहा है उससे एक ओर आशंका को बल मिलता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि नरेन्द्र मोदी और भाजपा आगामी लोकसभा के चुनाव में

400 की संख्या लाने के बाद देश में संवैधानिक ढांचे को बदल दें और अभी देश ने जो संसदीय लोकतंत्र स्वीकार किया है उसे बदलकर राष्ट्रपति प्रणाली लाने का भीतर का लक्ष्य हो। तब यह प्रचार किया जायेगा कि संसदीय लोकतंत्र होने की वजह से सरकार काम नहीं कर पाती है याने लोकसभा और राज्यसभा में प्रतिपक्ष अडंगेबाजी करता है इसलिये अब देश में राष्ट्रपति प्रणाली होना आवश्यक है ताकि एक ही व्यक्ति सारे निर्णय कर सके। यह आशंका इसलिये भी तार्किक लगती है क्योंकि संघ के मूल विचारक स्वर्गीय गुरु गोलवलकर जी ने अपनी पुस्तक में एक व्यक्ति केन्द्रित राष्ट्र की कल्पना की है। वो संसदीय लोकतंत्र के पक्षधर नहीं थे बल्कि राष्ट्रपति प्रणाली के पक्षधर थे। वैसे भी कई हजार वर्ष से भारत राजतंत्रीय और रजवाड़ों का मुल्क रहा है जहां लोगों की मानसिकता कमोवेश अभी भी राजा को चुनने और देखने की है। और उसके इस मानस में नये राजतंत्र को स्वीकृत कराना आसान हो जायेगा। मुझे याद है कि जब शिवराज सिंह चौहान पहली बार मुख्यमंत्री बने थे और उनके विधानसभा क्षेत्र दौरे के समय उनके जूते तत्कालीन कलेक्टर ने उन्हें उठाकर दिये थे जिसके समाचार और चित्र अखबारों में छपे थे। जब इसकी आलोचना हुई तो तत्कालीन भाजपा के संगठन मंत्री श्री कप्तान सिंह सोलंकी ने बयान दिया था कि इसमें कुछ गलत नहीं है। मुख्यमंत्री राजा होता है। कांग्रेस पार्टी में तो पहले ही यह हो चुका है। 1976 में आपातकाल में स्व. संजय गांधी के जूते उठाते तत्कालीन मुख्यमंत्री स्व. नारायणदत्त तिवारी के चित्र सारे देश में देखे गये थे। उत्तरप्रदेश जैसे विशाल प्रदेश का मुख्यमंत्री उम्रदराज और वह भी जनमना जाति से ब्राह्मण अगर प्रधानमंत्री के बेटे के जूते उठा सकता है तो इस देश को कुछ भी स्वीकार्य हो सकता है। मैं व्यक्तिविरोधी नहीं हूं, न मोदी का भक्त हूं न अंध विरोधी हूं परंतु भारतीय लोकतंत्र को कायम रखने के लिये मैं चाहता हूं कि जनता हर पांच वर्ष में सरकारों को बदले ताकि सरकारें स्थिर होकर जड़ और तानाशाह न बन सकें। डॉ. लोहिया कहते थे कि जनता की सरकारों को रोटी के समान उलटते-पलटते रहना चाहिए तभी वे स्वादिष्ट रहती हैं, अन्यथा जलकर बेकार हो जाती हैं।

In Dev Bhumi, enactment of UCC topped off with Haldwani violence

Hindutva was first invoked in this Dev Bhumi in 1994 when it was still a part of Uttar Pradesh to oppose the then chief minister Mulayam Singh Yadav's decision to grant 27 per cent reservations to the backward castes. The protests later took the form of a movement for a separate Uttarakhand state.

Kanwal Bharti

At the outset, a narrative was built about Uttarakhand and the state began to be called Dev Bhumi (Land of the Gods). Now, once a state is designated Dev Bhumi, there will be two consequences. First, it becomes primarily a state of the Hindus, rendering non-Hindus, especially the Muslims and the Christians, outsiders and aliens. Second, all the other states, by implication, become land of the demons. Hindutva was first invoked in this Dev Bhumi in 1994 when it was still a part of Uttar Pradesh to oppose the then chief minister Mulayam Singh Yadav's decision to grant 27 per cent reservations to the backward castes. The protests later took the form of a movement for a separate Uttarakhand state. This movement was led by the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) and the Bharatiya Janata Party (BJP) and it met with success because the Brahmin lobby of the Congress backed it.

Subsequently, Uttarakhand was ruled alternately by the Congress and the BJP, both furthering the Hindutva agenda through their politics. With the Narendra Modi-led BJP forming its government at the Centre and in

many states, Muslim-hatred became a tool for boosting Hindutva. Cow slaughter and love jihad became key issues, mob-lynching became the new normal and anti-conversion laws were enacted. All this painted the Muslims as anti-nationals, terrorists and unwanted citizens. Despite all this, the RSS-BJP were unable to strike their roots as deep in Uttarakhand as they had done in Uttar Pradesh thanks to Yogi Adityanath. The BJP frequently changed its chief ministers in Uttarakhand till they found the perfect man in Pushkar Singh Dhami, who successfully fulfilled the wishes of the BJP high command.

One of the first announcements of Dhami after taking over as the chief minister was that Uniform Civil Code (UCC) would be implemented in the state. He got the UCC Bill cleared in the first session of the Vidhan Sabha. UCC has been on the RSS agenda for a long time and the BJP seems to be testing the waters by implementing it in Uttarakhand. However, the Scheduled Tribes, among whom polygamy is very common, have been kept out of the purview of the proposed code. How then the code remains "uniform" is anybody's guess.

Dhami knew that only oppression of Muslims could give a push to Hindutva. The UCC Bill was tabled in the Vidhan Sabha on 6 February 2024 and two days later, on 8 February, Dhami got a madrasa and a mosque bulldozed in the Banbhoolpura area of Haldwani. To suppress the protests by Muslims, shoot-at-sight orders were issued. Five persons were killed in police firing. It was claimed that stones were pelted from the rooftops of Muslim homes, injuring many policemen. But in videos which have gone viral in social media, stone pelters can be heard saying "katua" (a derogatory term for Muslim men). Clearly, the stone throwers were not Muslim but RSS-BJP men. Can we imagine Muslims abusing themselves, that too using an Islamophobic slur?

It is also claimed that miscreants indulged in arson and set a police station and a police vehicle on fire. Needless to say, nobody bothered to find out the religious affiliations of the arsonists. Dhami later said that the violence was pre-planned and that

those who tried to poison the atmosphere of Dev Bhumi would not be spared. That was enough hint for the police, which unleashed its might on Muslim localities. Cops barged into homes and picked up Muslim youth. Some terrified families had themselves locked in their homes from the outside. But locks were broken and the residents were subjected to all kinds of atrocities. The houses of some poor Muslims were bulldozed. Videos of women of such families narrating their ordeal have surfaced in social media. Many Muslim families fled to neighbouring districts and police are conducting raids there to apprehend them. It was the chief minister who poisoned the atmosphere, it was the chief minister who ignited trouble and it is the chief minister who is supervising the crackdown on the victims, holding them culpable for "planned violence". He is the murderer, the witness and the judge all rolled into one.

The BJP's top leadership is elated. What Adityanath had done in Uttar Pradesh, Dhami has successfully replicated in Uttarakhand. Hatred for Muslims has been whipped up in both the states and this augurs well for the politics of Hindu Rashtra.

Coming to specifics, why was the madrasa demolished? Was it a sudden and spontaneous action? No, not at all. Its script was being written for the past several months. In fact, it would not be wrong to say that the acts of commission and omission by both the state government and the High Court led to the demolitions. The madrasa and mosque at Banbhoolpura in Haldwani were ostensibly razed as these stood on Nazul land, which belongs to the government.

First, let us try to understand what Nazul land is. Asad Rehman has explained "Nazul land" in *The Indian Express* dated 13 February 2024. It is true that Nazul land is owned by the government but it is rarely used as such. Generally, the land is allotted to different institutions on lease for a period extending from 15 to 90 years in return for payment of an annual rent. Nazul land is generally put to public use such as for the building of schools, hospitals and village panchayat offices. In some cities, Nazul land has also been leased to housing societies. How did this land become available? During British rule, many battles were fought between the princely states and the British army. Whenever the states lost the battles, the British used to confiscate the land owned by the rulers. After independence, this land was supposed to be returned to the original owners. However, many of these erstwhile rulers did not have documents to prove their ownership. Such lands were declared "Nazul", with the respective state governments becoming their owners.

According to the Haldwani district administration, the land on which the madrasa and the mosque stood was registered as Nazul land and was owned by the local municipal corporation. The district administration said it had held discussions with the municipal corporation for 15-20 days in January to demolish the two buildings to prevent traffic jams. On 30 January, it issued a notice saying that either the encroachments be removed or documents proving ownership be presented within a period of three days. The management of the madrasa moved the High Court against the notice. The court fixed 14 February as the date for hearing but did not stay the notice. On 3 February, representatives of the madrasa management met the municipal corporation officials, seeking time till 14 February. They gave a written undertaking that they would accept the court order. But the administration bulldozed the madrasa and the mosque before the High Court could even hear the matter.

On the first impression, this action by the government and the administration was arbitrary and illegal and was driven by communal hatred. This was part of a well-scripted conspiracy to instigate riots

and thus give a fillip to Hindutva. There are many unanswered questions. For one, why the hurry to pull down the madrasa and the mosque? Could the administration not have waited till the High Court had heard the matter? Is a three-day notice to remove any construction adequate? Normally, 15 days to three months are given in such cases. But in this case, only three days were given. Clearly, the objective was to oppress the Muslims. The notice did not pass the test of legality. The excuse that the constructions were causing traffic jams was baseless. There were no complaints from the public in this regard. The madrasa was built by a certain Abdul Malik about 20 years ago. How could it have suddenly become an impediment to traffic? Why did the administration suddenly wake up to the need for unhindered flow of traffic? The fact is that the administration was under pressure from the chief minister and was determined to raze the madrasa and the mosque. There is also a possibility that pressure was brought to bear upon the High Court to ensure that it did not stay the notice. The court was well aware that unless the notice was stayed, it continued to be legally binding and the administration could take action on its basis. Why, then, did the court not bother to issue a stay order? Now, even if the court took up the case for hearing on 14 February, what purpose would it serve? The buildings have already been demolished and the government has taken possession of the land.

Another question is whether the government, the administration and the court would have acted in the same manner if the structure were not a mosque but a Hindu temple. Innumerable temples are sitting on encroached land. Can the BJP governments dare demolish them? Instead, it is even demolishing mosques that have not encroached, claiming that they stand on ruins of temples. Encroachment has come as another handy excuse for pulling down mosques. Chief Minister Dhami is now saying that a garden and a police station would be built on the land where the madrasa and mosque stood. Apparently, only mosques impede traffic flow, police stations don't. The government could have easily leased out the Nazul land to the madrasa. But pulling down mosques is in fashion in BJP-ruled states and expecting the governments to show large-heartedness is futile.

It is also being said that a "gaushala" will come up on the disputed plot of land. There is a possibility that the land may be allotted for a song to some BJP leader to set up the gaushala. It is more than clear that the demolition was nothing but an attempt to ignite a Hindu-Muslim riot.

The chief minister is describing the reaction of the Muslim community to the demolition as wanton violence and terrorism. This is in keeping with the BJP culture. There is a Hindi saying which roughly translates as "the mighty will beat you up and won't allow you to even cry". They will oppress you, they will persecute you and if you lift a pebble in response, you will be branded as a terrorist. There are reports that the government has confiscated the properties of Abdul Malik and his sons. Apparently, turning the victims into culprits and committing excesses on them is the definition of Ram Rajya in this Dev Bhumi. One of Kabir's couplet warns, "Don't harass the weak, for their wails can reduce the perpetrators to ashes." It doesn't seem to be happening. But what we can say with a degree of certainty is that if a community is constantly targeted, harassed to no end, turned into an object of hatred, it may keep quiet for some time for fear of reprisals but not for eternity. One day, some day, it may lose patience. This is what Taukir Raza, a Muslim religious preacher from Bareilly, hinted at.

As well-known poet Kalim Aziz has said:

"Daman pe koyee cheent, na khanjar par koyee daag, Tum katl karo ho ki karamaat karo ho"

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान वर्ष 1998 से सतत् रूप से संचालित हो रहा है। इस संस्थान से अध्ययन कर छात्र-छात्राएं प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अच्छे पदों पर पदस्थ हैं। साथ ही साथ शासकीय पद पर आसीन होकर इस संस्थान को गौरवान्वित कर रहे हैं।

: विषय :

मास्टर ऑफ आर्ट जर्नलिज्म (2 वर्ष)

प्रवेश प्रारंभ

संपर्क सूत्र

विजया पाठक (संचालक) - 9826064596

अर्चना शर्मा - 9754199671

कार्यालय - कार्पोरेट कार्यालय - एफ 116/17, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र.

संस्थान - 28, सुरभि विहार कालोनी, कालीबाड़ी, बी.डी.ए. रोड, भेल, भोपाल, म.प्र.